उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

एम.ए. (ज्योतिष)

MAJY-608

चतुर्थ सेमेस्टर

ज्योतिष प्रबोध-02

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

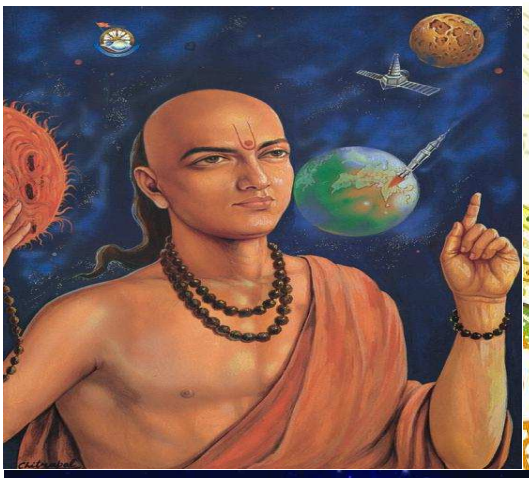

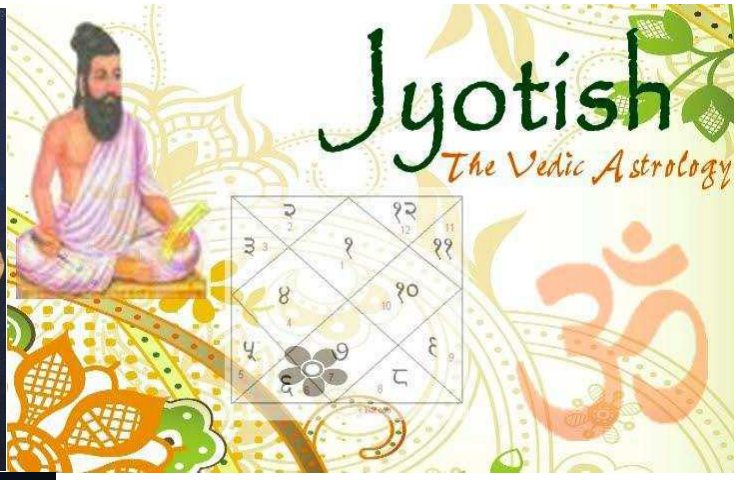

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं. - 05946- 288052
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन समिति - फरवरी 2020

अध्यक्ष

कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल – (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – (समन्वयक)
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 4, 5,6**
डॉ. प्रवेश व्यास असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वास्तु शास्त्र विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर	**1**	**3**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1, 2, 3, 4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रकाशन वर्ष - 2022
प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
मुद्रक: -
ISBN NO. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

एम.ए. (ज्योतिष) **MAJY-608**

चतुर्थ सेमेस्टर – तृतीय पत्र
ज्योतिष प्रबोध-02

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त	**पृष्ठ-2**
इकाई 1: भू-भ्रमण सिद्धान्त	3-16
इकाई 2: भू-आकर्षण सिद्धान्त	17-35
इकाई 3: पृथ्वी का गोलत्व	36-52
इकाई 4: परिधि व्यास सम्बन्ध	53-65
इकाई 5: बौधायन परिमेय	66-79
इकाई 6: शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली	80-101
द्वितीय खण्ड – अष्टक वर्ग विवेचन	**पृष्ठ-102**
इकाई 1: अष्टकवर्ग की अवधारणा	103-132
इकाई 2: भिन्नाष्टक वर्ग निर्माण	133-142
इकाई 3: समुदयाष्टक वर्ग निर्माण विधि	143-154
इकाई 4: अष्टक वर्ग फल विवेचन	155-165

एम.ए. (ज्योतिष)

(MAJY-20)

चतुर्थ सेमेस्टर

तृतीय पत्र

ज्योतिष प्रबोध-02

MAJY-608

खण्ड - 1
ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त

इकाई - १ भू-भ्रमण सिद्धान्त

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना

१.२ उद्देश्य

१.३ भू-भ्रमण परिचय

- १.३.१ भू (पृथ्वी) की उत्पत्ति
- १.३.२ पृथ्वी का भौतिक स्वरूप
- १.३.३ पृथ्वी का अर्न्तभाग

१.४ प्राच्य-पाश्चात्य मतानुसार भू –भ्रमण सिद्धान्त

- १.४.१ प्राच्य ज्योतिष के अनुसार भू-भ्रमण सिद्धान्त
- १.४.२ पाश्चात्य आधुनिक मतानुसार भू-परिक्रमण सिद्धान्त

१.५ सारांश

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई- 608 के प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – भू-भ्रमण सिद्धान्त। इसके पूर्व में आपने आचार्यों के जीवन परिचय से जुड़े इकाईयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष के प्रमुख सैद्धान्तिक पक्षों से अवगत होने जा रहे है।

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य विषय है – भू-भ्रमण सिद्धान्त। भू-भ्रमण का अर्थ है- पृथ्वी का भ्रमण। इसके सन्दर्भ में प्राचीन एवं अर्वाचीन मत में मतान्तर भी हमें दिखलाई पड़ते है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यह यह विषय बड़ा ही रोचक एवं महत्वपूर्ण है।

अत: आइए इस इकाई में हम सभी भू-भ्रमण के गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

१.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- भू-भ्रमण की परिभाषा क्या है।
- सिद्धान्त ज्योतिष में भू-भ्रमण का सिद्धान्त क्या है।
- अर्वाचीन मत में भू-भ्रमण का सिद्धान्त क्या है।
- सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भ्र-भ्रमण क्या है।
- भू-भ्रमण का महत्व क्या है।

१.३ भू-भ्रमण सिद्धान्त परिचय

भू-भ्रमण सिद्धान्त ज्योतिष का एक महत्वपूर्ण एवं रोचक विषय है। भू-भ्रमण का शाब्दिक अर्थ है- भू अर्थात् पृथ्वी तथा उसका भ्रमण मतलब घूमना। इस प्रकार भूभ्रमण का अर्थ है- पृथ्वी का घूमना। पृथ्वी के घूमने के सम्बन्ध में हम यदि अध्ययन करते हैं तो यह मालूम होता है कि प्राच्य-पाश्चात्य दृष्टिकोण से इसमें मत-मतान्तर रहा है। प्राच्य जगत् (ज्योतिष जगत्) पृथ्वी को स्वशक्ति से निराधार आकाश में स्थिर मानता है। जबकि आधुनिक विज्ञान पृथ्वी को चलायमान मानता है। उनके अनुसार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। उसकी घूर्णन गति होती है, और वह अपने अक्ष पर

निरन्तर भ्रमण करते रहती है।

भू-भ्रमण की जानकारी से पूर्व हमें भू अर्थात् पृथ्वी से भी परिचति होना चाहिए। पृथ्वी किसे कहते है? उसका प्राच्य-पाश्चात्य दृष्टिकोण से स्वरूप कैसा है? इसका संक्षिप्त उल्लेख करते हुए पुन: भूभ्रमण के बारे में जानेंगे।

१.३.१ भू (पृथ्वी) की उत्पत्ति –

पृथ्वी अथवा पृथिवी एक संस्कृत शब्द हैं जिसका अर्थ " एक विशाल धरा" निकलता हैं। एक अलग पौराणिक कथा के अनुसार, महाराज पृथु के नाम पर इसका नाम पृथ्वी रखा गया। इसके अन्य नामो में- धरा, भूमि, धरित्री, रसा, रत्नगर्भा इत्यादि सम्मलित हैं। अन्य भाषाओं में इसे जैसे- अंग्रेजी में अर्थ(Earth) और लैटिन भाषा में टेरा (Terra) कहा जाता हैं। यद्यपि सभी नामो में इसका अर्थ लगभग सामान ही हैं।

पृथ्वी के उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऐसी मान्यता है कि एक समय आकाश में सर्वत्र वाष्प कण (गैस) व्यापक रूप से व्याप्त थे। वाष्प कणों के आकर्षण एवं विकर्षण से अणु-परमाणुओं की उत्पत्ति हुई। ये ही अणु-परमाणु पृथ्वी की उत्पत्ति के कारणस्वरूप हैं। जैन दर्शन इसकी व्यापक चर्चा करता है, यथा-

अण्वादीनां संघाताद द्वयणुकादय उत्पद्यन्ते।

तत्र स्वावस्थिताकृष्टशक्ति रेवाघसंयोगे कारणभावामापद्यते।।

इस सन्दर्भ में श्रुति कहती है- ''आकाशाद्वायुर्वायोरग्नि- रग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी चोत्पद्यते'' अर्थात् आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। स्पष्ट होता है कि वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। आरम्भ में मात्र आकाश व वाष्प कण ही समस्त जगत्-मण्डल में व्यापक रूप से व्याप्त थे। इन्हीं के आकर्षण-विकर्षण से सृष्टि हुई है।

हमारी पृथ्वी का भूमध्यरेखीय व्यास मान 12756 किलोमीटर है तथा ध्रुवीय व्यास 12714 कि.मी. है। इसके चारों तरफ वायुमण्डल का एक मोटा आवरण है जो अन्तरिक्ष से आने वाली घातक विकिरणों एवं उल्कापातों से हमारी रक्षा करता है। पृथ्वी के धरातल का 71 प्रतिशत भाग जल से ढका है तथा शेष भाग ही भूतल के रूप में जाना जाता है जिस पर दुनिया के सभी महाद्वीप हैं। पृथ्वी का एक चुम्बकीय क्षेत्र भी है और इसके चारों ओर आवेशित कणों की दो विकिरण पट्टियाँ हैं जिन्हें वान एलेन विकिरण पट्टियाँ कहते हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर झकोरा खाते हुए लट्टू के समान घूमती है। इस प्रकार अक्ष 26000 वर्षों में लट्टू के आकार में घूमते हुए एक चक्कर पूरा करती है। इसी के आधार पर तारों के सापेक्ष ध्रुव की स्थिति बदलती रहती है। वर्तमान में 'पोलारिस' तारा हमारा ध्रुव तारा है। परन्तु लगभग सन् 14000 तक 'लीरा' नक्षत्र मण्डल में स्थित 'वेगा' तारा ध्रुव तारा हो

जाएगा। भारतीय ज्योतिष में कमलाकर भट्ट ने सर्वप्रथम ध्रुव तारे को चल-तारा कहा और यह स्पष्ट रूप में कहा कि ध्रुव स्थिर नहीं है, वह स्थान बदलता है। हमारी पृथ्वी सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह नहीं है। बुध, शुक्र, मंगल से हमारी पृथ्वी बड़ी है परन्तु शनि, बृहस्पति, यूरेनस तथा नेप्च्यून से छोटी है। सौर-परिवार का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति है। यह हमारी पृथ्वी से 1300 गुणा बड़ा तथा 318 गुणा भारी है। कह सकते हैं कि बृहस्पति के अन्दर यदि हम पृथ्वी को डालें तो कम-से-कम 1300 पृथ्वियाँ बृहस्पति में समा सकती हैं। हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह है जिसे हम चन्द्र कहते हैं। इसी के कारण पृथ्वी में ज्वारभाटा आता है तथा इसी के कारण सूर्य एवं चन्द्रग्रहण मुख्य रूप से होते हैं। पूरे सौर-परिवार में मात्र हमारी पृथ्वी ही ऐसी है जिस पर जीवन है।

१.३.२ पृथ्वी का भौतिक स्वरूप

1.	पृथ्वी का व्यासमान–	
	भूमध्यरेखीय	12756 कि.मी.
	ध्रुवीय	12714 कि.मी.
2.	अक्ष परिभ्रमण काल	23 धण्टा, 56 मिनट, 04 सेकेण्ड
3.	कक्षीय परिभ्रमण काल	365.5 दिन
4.	सूर्य से दूरी	149600000 कि.मी.
5.	कक्षीय गति	29.8 कि.मी/सेकेण्ड
6.	अक्षीय झुकाव	23.5 अंश
7.	पलायन गति	11.2 कि.मी/सेकेण्ड
8.	घनत्व	05.52 (जल की अपेक्षा)
9.	पृष्ठीय तापमान	22^0 सेंटीग्रेड
10.	वायुमण्डल के मुख्य अंग–	
	नाइट्रोजन	78.5 प्रतिशत
	ऑक्सीजन	21.0 प्रतिशत
11.	भूपटल के मुख्य अंग–	
	ऑक्सीजन	47 प्रतिशत
	सिलिकन	28 प्रतिशत
	एल्यूमिनियम	08 प्रतिशत
	लोहक पदार्थ	05 प्रतिशत
12.	भूतर का क्षेत्रफल	148326000 वर्ग कि.मी.
13.	भूतल क्षेत्र	29 प्रतिशत
14.	जलीय क्षेत्रफल	361740000 वर्ग कि.मी.
15.	जलीय क्षेत्रफल	71 प्रतिशत
16.	आयतन	1083208850000 घन कि.मी.
17.	सर्वोच्च पर्वत (एवरेस्ट)	8848 मीटर
18.	गहनतम गर्त (प्र. म. मैरीयन)	11033 मीटर
19.	परिक्रमण मार्ग से दूरी	96 करोड़ कि.मी.
20.	उपग्रह संख्या	01 (चन्द्र)

भू-पटल

पृथ्वी की जिस ऊपरी सतह पर हम अपना व्यवहार करते हैं अर्थात् जिस पर हम मकान बना कर रहते हैं, खाद्य पदार्थ उपजाते हैं, वह भूपटल का ऊपरी भाग है। संक्षेप में कहें तो हम कह सकते हैं कि मिट्टी व शिलाओं से बने पृथ्वी के बाहरी आवरण को ही भूपटल कहते हैं। इसे ही पृथ्वी की पपड़ी भी कहते हैं। सन् 1928 में एफ. डब्ल्यू. क्लार्क और एच. एस. वाशिंगटन ने पृथ्वी के विभिन्न भागों से बहुत प्रतिदर्श (SAMPLES) एकत्रित किए और उनका रासायनिक विश्लेषण किया। लगभग 5159 विश्लेषणों के आधार पर पृथ्वी की पपड़ी की जो रासायनिक संरचना बताई गई वह निम्नलिखित सारिणी में दिया गया है।

भू-पटल में रासायनिक योग

	तत्व	तत्वों के प्रतीक	मात्रा प्रतिशत में
1.	ऑक्सीजन	O	46.71
2.	सिलिकॉन	Si	27.69
3.	एल्युम्यूनियम	Al	08.07
4.	लोहा	Fe	05.05
5.	कैलसियम	Ca	03.65
6.	सोडियम	Na	02.75
7.	पोटिशयम	K	02.58
8.	मैग्नीशियम	Mg	02.08
9.	टाइटेनियम	Ti	00.62
10.	हाइड्रोजन	H	00.14
11.	फास्फोरस	P	00.13
12.	कार्बन	C	00.094
13.	मैगनीज	Mn	00.090
14.	गन्धक	s	00.052
15.	बेरियम	Ba	00.050
16.	विरल तत्व		00.244
		योग	**100.00**

भू-पटल के अणुओं का योग

	अणु	अणु सूत्र	मात्रा प्रतिशत में
1.	सिलिका	$Si O_2$	59.07
2.	ऐल्यूमिना	$Al_2 O_3$	15.22
3.	लोहिक आक्साइड	$Fe O_3$	03.10
4.	लोहस आक्साइड	$Fe O_2$	03.71
5.	मैगनीशिया	Mg O	03.45

6.	कैलसियम आक्साइड	Ca O	05.10
7.	सोडियम आक्साइड	Na_2 O	03.71
8.	पोटेशियम आक्साइड	K_2O	03.11
9.	हाईड्रोजन आक्साइड	H_2O	01.30
10.	कार्बन–डाईआक्साइड	CO_2	00.35
11.	टाइटेनियम आक्साइड	Ti O_2	01.03
12.	फासफोरस आक्साइड	P2 O_2	00.30
13.	मैगनीज डाईआक्साइड	Mn O_2	00.11
14.	जिरकॉन आक्साइड	Zr O_2	00.04
15.	बोरियम आक्साइड	Ba O	0.05
16.	स्ट्राशियम आक्साइड	Sr O	0.02
17.	शेष		0.33
		योग	**100.00**

१.३.२ पृथ्वी का अन्तर्भाग : -

पृथ्वी के गर्भ में क्या है? वहाँ कैसी स्थिति है? इस विषय में बहुत मतमतान्तर हैं। प्रायः पृथ्वी के गर्भ में गर्म पिघला हुआ लावा अधिकतर लोग मानते हैं। वेदों में भी पृथ्वी को अग्निगर्भा कहकर उद्धृत किया गया है। यथा-'आग्नेयी पृथिवी:[1]', 'आग्नेयोऽयं लोकः'[2], 'अग्निगर्भा पृथिवी'[3]। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी यह धारणा थी कि पृथ्वी का गर्भ अग्निवत् है।

(1. ताण्डय ब्राह्मण 15।4।8 2. जैमिनीयोपनिषद् 9।37।2 3. शतपथ ब्राह्मण 14।94।21)

पृथ्वी की लगभग 70 कि.मी. गहरी एक नरम परत है जिसको हम भूपृष्ठ कहते हैं। महाद्वीप एवं महासागर इसी पृष्ठभाग में स्थित है। भूकम्प जैसी घटनाएँ भी इसी क्षेत्र में होती हैं। इसके नीचे लगभग 700 कि.मी. तक गहरी कठोर चट्टानी परत है यही ज्वालामुखी चट्टानें भी विद्यमान रहती हैं। इसके अन्दर 2000 कि.मी. मोटी परत प्रायः अंगारे के समान गर्म परत है यह अधिक कठोर नहीं है। इसे भीतर का भाग खौलते हुए लोह आदि धातुओं से भरा है। इसके मध्य में एक ठोस गोलाकार पिण्ड भूकेन्द्र में धातुओं से भरा है। इसके मध्य में एक ठोस गोलाकार पिण्ड भूकेन्द्र में विद्यमान है जिसे हम सौलिड कोर भी कह सकते हैं।

भूकम्प की लहरों, ज्वालामुखियों, खदानों तथा संछिद्रों के अध्ययनोपरान्त पृथ्वी के अन्तर्भाग के सन्दर्भ में दो मुख्य बातें स्पष्ट होती है। पहली यह कि पृथ्वी के अन्दर गहराई की वृद्धि के साथ ही तापमान की वृद्धि भी होती है तथा दूसरी यह कि गहराई के साथ-साथ घनत्व की बढ़ोतरी भी होती है। पृथ्वी के गर्भ की दशा कैसी है? अन्तर्भाग ठोस है, द्रव है या वायत्व (गैसीय) है-जिसमें से एक उबला हुआ तथा दूसरा बिना उबला हुआ था-यह दिखाया कि उबला हुआ अंडा ही घूम

सकता है। क्योंकि इसका भीतरी भाग ठोस है। पृथ्वी भी अपनी धुरी पर घूमती है। इसके विपरीत दूसरे वैज्ञानिकों ने यह माना कि पृथ्वी का तरल पदार्थ (लावा) इसका प्रमाण है। कुछ का कहना है कि गहराई में अत्यधिक दबाव विद्यमान है जिसके कारण स्थलीय पदार्थ उच्च तापमान पर होने पर भी ठोस वस्तुओं की तरह ही व्यवहार करते हैं। यदि किसी कारण से दबाव में कमी हो जाए तो ये वस्तुएँ तरल रूप में परिवर्तित हो जाएँगी तथा किसी भी दरार आदि के द्वारा बाहर निकल कर धरातल पर बहने लगेंगी। इसी प्रक्रिया को ज्वालामुखी कहते हैं। अतः यह कह सकते हैं कि ज्वालामुखी का लावा यह प्रमाणित नहीं करता कि भूगर्भ में तरल पदार्थ है। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भूविशेषज्ञों का कहना था कि पृथ्वी का अन्तःकेन्द्र निकिल और लोह का बना हुआ है परन्तु आधुनिकतम रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि यह केन्द्र भाग भी शैल पदार्थों से ही बना है, परन्तु यहाँ सर्वाधिक दबाव की स्थिति है जिसके कारण पृथ्वी का आन्तरिक घनत्व भी अधिक है। उत्तरोत्तर अनुसंधानों से नित्य-नूतन विचार भी आते रहते हैं।

१.४ प्राच्य-पाश्चात्य मतानुसार भू-भ्रमण विचार

१.४.१ प्राच्य मतानुसार (ज्योतिष) के अनुसार भू-भ्रमण सिद्धान्त

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार **सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने तीसरी-चौथीं शताब्दी में ही भू-भ्रमण के सिद्धान्त को प्रतिपादित** कर दिया था। आर्यभट्ट का जन्म तीसरी-चौथी शताब्दी (३९८ शक्) में भारतवर्ष में पाटलिपुत्र शहर के अन्तर्गत कुसुमपुर नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने ही प्रथम बार यह कहा था कि तारामण्डल स्थिर है और भू (पृथ्वी) अपनी दैनिक भ्रमण (घूमने) की गति से नक्षत्रों तथा ग्रहों का उदय और अस्त करती है। आर्यभट्ट द्वारा विरचित सुप्रसिद्ध 'आर्यभट्टीयम्' नामक ग्रन्थ के गोलपाद में भूगोल स्वरूप बतलाते हुए आचार्य का कथन है कि –

वृत्तभपंजरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्ज्लशिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतो वृत्तः।।
यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः।।

अर्थात् वृत्ताकार नक्षत्रमण्डल के मध्य में, ग्रहों की कक्षाओं से परिवेष्टित आकाश के मध्य में पृथ्वी का गोला स्थित है। यह चारों ओर से गोल है अर्थात् दर्पण आदि की भाँति गोल नहीं है, गेंद की भाँति गोल है। यह मिट्टी, जल, अग्नि एवं वायुमय है। जिस प्रकार कदम्ब के फूल की ग्रन्थि चारों ओर से छोटे कुसुमों से व्याप्त रहती है उसी प्रकार पृथ्वी का गोला जल में अथवा स्थल पर पैदा होने

वाले सभी प्राणियों से व्याप्त है। खमध्य में स्थित होने का यह अर्थ है कि पृथ्वी किसी आधार पर स्थित नहीं है अपितु निराधार है। पृथ्वी के सम्बन्ध में ऐसा ही मत ज्योतिष शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य वराहमिहिर का भी है। जैसा कि पंचसिद्धान्तिका में उनका कथन है –

पंचमहाभूतमयस्तारागणपंजरे महीगोल:।

खेऽस्यस्कान्तान्त:स्थो लोह इवावस्थितो वृत्त:।।

अर्थात् पृथ्वी का गोला जो पंचमहाभूतों का बना है आकाश में तारामण्डल के मध्य में वैसे ही स्थित है जैसे लोहे का टुकड़ा चुम्बकों के बीच में निराधार स्थित रह सकता है।

आर्यभट्ट जी ने पृथ्वी को केवल चार महाभूतमय कहा है परन्तु वराहमिहिर ने पाँचवें महाभूत आकाश का भी उल्लेख किया है।

आर्यभट्ट का भू-भ्रमण सिद्धान्त

'आर्यभट्टीयम्' नामक ग्रन्थ के गोलपाद में आर्यभट्ट जी ने भू-भ्रमण सिद्धान्त के बारे में कहते हुए लिखा है कि –

अनुलोमगतिर्नौस्थ: पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।

अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्।।

अर्थात् जैसे नाव में बैठा हुआ कोई मनुष्य जब पूर्व दिशा में जाता है तब नदी के तीर की अचल वस्तुओं को विपरीत दिशा में जाता हुआ अनुभव करता है। उसी प्रकार अचल तारागण दशशिरपुरि लंका (जहाँ सूर्य का प्रथम बार उदय हुआ था अथवा जहाँ से वार-प्रवृत्ति आरम्भ हुई थी) में पश्चिम की ओर जाते प्रतीत होते हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि तारामण्डल तथा ग्रहों के उदय तथा अस्त के लिए वे नित्य ही प्रवह वायु द्वारा चलाये जाकर लंका में ठीक पश्चिम दिशा में भ्रमण कर रहे हैं।

इससे स्पष्ट है कि आर्यभट्ट यह मानते थे कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और तारामण्डल स्थिर है। इस सम्बन्ध में ज्योतिष के अन्य विभिन्न आचार्यों ने आर्यभट की आलोचना भी की है। भास्कर द्वितीय के सिद्धान्तशिरोमणि के भगणाध्याय के प्रथम छ: श्लोकों के वासना वार्तिक में नृसिंह ने कहा है –

आर्यभट्टास्तु ग्रहा: पूर्वस्यां यान्ति। नक्षत्राणि तु स्थिराण्येव भूरेव नाक्षत्रदिनमध्ये पूर्वाभिमुखमेकवारं भ्रमति। तेनैव नक्षत्रग्रहाणामुदयास्तौ पूर्वपश्चिमयोर्घटत: प्रवहानिलकल्पना व्यर्था।

अर्थात् ग्रह पूर्व की ओर चलते है। आर्यभट्ट के अनुसार नक्षत्रगण स्थिर ही हैं, पृथ्वी ही एक नाक्षत्रदिन में पूर्व की ओर एक बार घूमती है। इसी कारण नक्षत्रों तथा ग्रहों का उदय एवं अस्त

क्रमश: पूर्व और पश्चिम में होता है। प्रवह वायु की कल्पना व्यर्थ है।

कोलब्रुक ने ब्रह्मगुप्त के भाष्यकार पृथूदकस्वामी द्वारा उद्धृत की गई आर्यभट्ट की एक आर्या को उद्धृत किया है –

भपंचजर: स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम्।।

यह आर्या कदाचित् पृथुदकस्वामी ने आर्यभट्ट के दूसरे ग्रन्थ से उद्धृत की है जो अब प्राप्य नहीं है। इसमें स्पष्ट रूप से आर्यभट्ट ने कहा है कि तारामण्डल स्थिर है और भू (पृथ्वी) अपनी दैनिक भ्रमण (घूमने) की गति से नक्षत्रों तथा ग्रहों का उदय और अस्त करती है।

गोल परिभाषा में पृथ्वी -

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खेऽस्थित:।
पृथुत्वात् समवद् भाति चलोऽप्यचलवद् तथा।।
आवृतोऽयं क्रमाच्चन्द्र बुधशुक्राऽर्कभूभूवाम्।
गोलैजीवार्कीभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

अर्थात् यह भूमि गोल अपनी शक्ति से निराधार आकाश में स्थित है। यह अत्यन्त विशालकाय होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होती है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि तथा नक्षत्र गोल के द्वारा उर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है। भूगोल के चारों तरफ उपर-उपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि तथा नक्षत्रों के मण्डल हैं।

भास्कराचार्य का मत में भूगोल स्वरूप –

आचार्य भास्कर का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के भुवनकोश अध्याय में भूमि स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

भूमे: पिण्ड: शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा।
वृत्तैर्वृतो वृत: सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधार: स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे।।
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्।।
सर्वत: पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चित:।
कदम्बकुसुमग्रन्थि: केसरप्रसरैरिव।।

अर्थात् मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त यह तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम,गुरु, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के

स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के उपर जगत विद्यमान है। इस पर दानव, मानव, देव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक उर्ध्व केसर लगी रहती है।

पुराणों में भूमिआधार की परम्परा –

मूर्तो धर्ता चेद्धरित्रयास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था।

अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्ति: किमाद्ये किं नो भूमे: साष्टमूर्तेश्च मूर्ति:।।

अर्थात् यदि हम मान लें कि मूर्त रूप पृथ्वी को कोई धारण करने वाला धर्ता है तो उस धर्ता को भी धारण करने वाला अन्य दूसरा धर्ता होगा, इसी प्रकार उसको भी धारण करने वाला कोई और अन्य धर्ता होगा। इस प्रकार हमें कोई अन्तिम धारक को मानना ही पड़ेगा कि जो स्वशक्ति से ही स्थित है तथा उसको धारण करने वाला कोई नहीं है। अत: पृथ्वी का कोई अन्य आधार नहीं है। पुराणों में भगवान शेषनाग को पृथ्वी का धारक माना गया है। वस्तुत: शेष नाग एक शक्ति का भाव भी समझा जा सकता है जिसने पृथ्वी को अपने उपर धारण कर रखा है। शक्ति कल्पना की युक्ति का भाव है।

अन्य भूमि सम्बन्धि मत –

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुति: के कठिनत्वमश्मनि।

मरूच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तय:।।

श्लोक का अर्थ है कि जिस प्रकार अग्नि और सूर्य में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में तरलता है, पाषाण में कठोरता है, वायु में गति है, ये सब स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। उसी प्रकार पृथ्वी में अचलता अर्थात् स्थिरता का गुण स्वाभाविक है। इस विचित्र गुण के कारण यह स्थिर रह सकती है।

इस प्रकार भू-भ्रमण एवं उसके स्वरूपादि से आप परिचित हो चुके हैं। अब आप पाश्चात्य मत का भी आगे अध्ययन करने जा रहें हैं।

१.४.२ पाश्चात्य (आधुनिक) मत में भू-परिक्रमण -

सूर्य के सापेक्ष पृथ्वी की परिक्रमण अवधि (सौर दिन) 86,400 सेकेंड (86,400.0025 एसआई सेकंड) का होता है। अभी पृथ्वी में सौर दिन, 19वीं शताब्दी की अपेक्षा प्रत्येक दिन 0 और 2 एसआई एमएस अधिक लंबा होता हैं जिसका कारण ज्वारीय मंदी का होना माना जाता हैं।

स्थित सितारों के सापेक्ष पृथ्वी की परिक्रमण अवधि, जिसे अंतर्राष्ट्रीय पृथ्वी परिक्रमण और संदर्भ सिस्टम सेवा (आईआईएस) द्वारा एक तारकीय दिन भी कहा जाता है, औसत सौर समय (यूटी1) 86,164.0989091 सेकंड, या 23 घण्टे 56 मिनट और 4.098909191986 सेकेंड का होता है।

वातावरण और निचली कक्षाओं के उपग्रहों के भीतर उल्काओं के अलावा, पृथ्वी के आकाश में आकाशीय निकायों का मुख्य गति पश्चिम की ओर 15 डिग्री/ घंटे = 15 '/ मिनट की दर से होती है। पृथ्वी अपनी कक्षा में 1675 किमी/घंटा की गति से चक्कर लगता है।

पृथ्वी बाह्य अंतरिक्ष, में सूर्य और चंद्रमा समेत अन्य वस्तुओं के साथ क्रिया करता है वर्तमान में, पृथ्वी मोटे तौर पर अपनी धुरी का करीब ३६६.२६ बार चक्कर काटती है यह समय की लंबाई एक नाक्षत्र वर्ष (sidereal year) है जो ३६५.२६ सौर दिवस के बराबर है पृथ्वी की घूर्णन की धुरी इसके कक्षीय समतल (orbital plane) से लम्बवत (perpendicular) २३.४ की दूरी पर झुका है जो एक उष्णकटिबंधीय वर्ष (tropical year) (३६५.२४ सौर दिनों में) की अवधी में ग्रह की सतह पर मौसमी विविधता पैदा करता है।

पृथ्वी का एकमात्र प्राकृतिक उपग्रह चंद्रमा (natural satellite) है, जिसने इसकी परिक्रमा ४.५३ बिलियन साल पहले शुरू की। यह अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा समुद्री ज्वार पैदा करता है, धुरिय झुकाव को स्थिर रखता है और धीरे-धीरे पृथ्वी के घूर्णन को धीमा करता है।

कोपरनिकस का भू-भ्रमण सिद्धान्त

पाश्चात्य (आधुनिक) मत में यह सर्वविदित है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है यह सिद्धान्त अथवा भू-भ्रमण सिद्धान्त सर्वप्रथम कोपरनिकस द्वारा दिया गया था। जबकि यह सत्य नहीं है। आपने पूर्व में ही यह अध्ययन कर लिया है कि भू-भ्रमण का सिद्धान्त आर्यभट्ट ने तीसरी-चौथी शताब्दी में ही अपने ग्रन्थ 'आर्यभट्टीयम्' में प्रतिपादित कर दिया था। अर्थात् कोपरनिकस से लगभग 1000 वर्ष पूर्व ही यह भू-भ्रमण का सिद्धान्त भारतवर्ष में आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित किया जा चुका था।

यूरोप का एक देश पोलैण्ड में जन्में **निकोलस कोपरनिकस** (19 फ़रवरी 1473 – 24 मई 1543) पोलिश खगोलशास्त्री व गणितज्ञ थे। पाश्चात्य दृष्टिकोण से उन्होंने यह क्रांतिकारी सूत्र दिया था कि पृथ्वी अंतरिक्ष के केन्द्र में नहीं है।

निकोलस पहले यूरोपिय खगोलशास्त्री थे जिन्होंने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड के केन्द्र से बाहर माना, यानी हीलियोसेंट्रिज्म मॉडल को लागू किया। इसके पहले पूरा युरोप अरस्तू की अवधारणा पर विश्वास करता था, जिसमें पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र थी और सूर्ये, तारे तथा दूसरे पिंड उसके चारों ओर चक्कर लगाते थे।

1530 में कोपरनिकस की किताब डी रिवोलूशन्स (De Revolutionibus) प्रकाशित हुई जिसमें उसने बताया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई एक दिन में चक्कर पूरा करती है और एक साल में

सूर्य का चक्कर पूरा करती है। कोपरनिकस ने तारों की स्थिति ज्ञात करने के लिए प्रूटेनिक टेबिल्स की रचना की जो अन्य खगोलविदों के बीच काफी लोकप्रिय हुई।

कोपरनिकस के अन्तरिक्ष के बारे में सात नियम, जो उनकी किताब में दर्ज हैं, इस प्रकार हैं : -

- सभी खगोलीय पिंड किसी एक निश्चित केन्द्र के परितः नहीं हैं
- पृथ्वी का केन्द्र ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं है; वह केवल गुरुत्व व चंद्रमा का केन्द्र है
- सभी गोले (आकाशीय पिंड) सूर्य के परितः चक्कर लगाते हैं। इस प्रकार सूर्य ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र है
- पृथ्वी की सूर्य से दूरी, पृथ्वी की आकाश की सीमा से दूरी की तुलना में बहुत कम है
- आकाश में हम जो भी गतियां देखते हैं वह दरअसल पृथ्वी की गति के कारण होता है। (आंशिक रूप से सत्य)
- जो भी हम सूर्य की गति देखते हैं, वह दरअसल पृथ्वी की गति होती है
- जो भी ग्रहों की गति हमें दिखाई देती है, उसके पीछे भी पृथ्वी की गति ही जिम्मेदार होती है

बोध प्रश्न : -

1. ज्योतिष के अनुसार भू-भ्रमण का सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया था।
   क. वराहमिहिर ने ख. कोपरनिकस ने ग. आर्यभट्ट ने घ. केप्लर ने
2. 'भू' का शाब्दिक अर्थ होता है –
   क. धरा ख. पृथ्वी ग. मही घ. उपर्युक्त सभी
3. आर्यभट्टीयम् किसकी रचना है।
   क. वराहमिहिर की ख. आर्यभट की ग. भास्कर घ. गणेश
4. पाश्चात्य मत में भू-भ्रमण का सिद्धान्त किसने बताया।
   क. कोपरनिकस ने ख. कोलब्रुक ने ग. टैकोब्राहे घ. केप्लर
5. कोपरनिकस का जन्म किस देश में हुआ था।
   क. पोलेण्ड ख. हालैण्ड ग. अमेरिका घ. इटली
6. पुराणों के अनुसार पृथ्वी का धर्ता कौन है।
   क. शेषनाग ख. विष्णु ग. शिव घ.गणेश
7. आर्यभट्ट का जन्म कहाँ हुआ था।

क. पाटलिपुत्र ख. दरभंगा ग. गया घ. राँची

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भू-भ्रमण सिद्धान्त ज्योतिष का एक महत्वपूर्ण एवं रोचक विषय है। भू-भ्रमण का शाब्दिक अर्थ है- भू अर्थात् पृथ्वी तथा उसका भ्रमण मतलब घूमना। इस प्रकार भूभ्रमण का अर्थ है- पृथ्वी का घूमना। पृथ्वी के घूमने के सम्बन्ध में हम यदि अध्ययन करते हैं तो यह मालूम होता है कि प्राच्य-पाश्चात्य दृष्टिकोण से इसमें मत-मतान्तर रहा है। प्राच्य जगत् (ज्योतिष जगत्) पृथ्वी को स्वशक्ति से निराधार आकाश में स्थिर मानता है। जबकि आधुनिक विज्ञान पृथ्वी को चलायमान मानता है। उनके अनुसार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। उसकी घूर्णन गति होती है, और वह अपने अक्ष पर निरन्तर भ्रमण करते रहती है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भू-भ्रमण का सिद्धान्त सर्वप्रथम आर्यभट ने बतलाया था। पाश्चात्य मत में कोपरनिकस के अनुसार भू-भ्रमण का प्रतिपादक बतलाया जाता है। प्राच्य-पाश्चात्य दृष्टि से इनमें मत-मतान्तर परिलक्षित होते हैं।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

भू – पृथ्वी

भ्रमण - घूमना

अनुलोम – उल्टा

अचल – जो चलता नहीं अर्थात् स्थिर

प्राच्य – प्राचीन या पुरातन

पाश्चात्य – पश्चिम या विदेशी

भानि – नक्षत्राणि

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. घ
3. ख
4. क
5. क
1. क

2. क

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा

2. पंचसिद्धान्तिका – मूल लेखक – वराहमिहिर

3. आर्यभट्टीयम् – मूल लेखक – आर्यभट्ट, टिका – रामनिवास राय।

4. गोल परिभाषा – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्तशिरोमणि

2. सूर्यसिद्धान्त

3. सिद्धान्ततत्वविवेक

4. पंचसिद्धान्तिका

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. भू-भ्रमण से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।

2. आर्यभट्टीयम् के अनुसार भू-भ्रमण का प्रतिपादन कीजिये।

3. पृथ्वी का परिचय दीजिये।

4. भू के भौतिक एवं रासायनिक स्वरूप का वर्णन कीजिये।

5. आधुनिक मतानुसार भू-भ्रमण का उल्लेख कीजिये।

6. कोपरनिकस के मुख्य सिद्धान्त का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई - २ भू - आकर्षण सिद्धान्त

इकाई की संरचना

२.१ प्रस्तावना

२.२ उद्देश्य

२.३ भू-आकर्षण सिद्धान्त परिचय

२.३.१ भू आकर्षण क्या है।

२.३.२ भास्करीय आकर्षण सिद्धान्त का आविष्कार

२.३.३ वर्तमान में प्रचलित गुरुत्वाकर्षण या आकर्षण सिद्धान्त

२.४ आकर्षण सिद्धान्त का सत्यापन

२.४.१ केप्लर के नियम

२.४.२ न्यूटन के गति का नियम

२.५ सारांश

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

२.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-608 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – भू-आकर्षण सिद्धान्त। इसके पूर्व में आपने भू-भ्रमण के सिद्धान्त का अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष के प्रमुख सैद्धान्तिक पक्षों के क्रम में ही भू-आकर्षण सिद्धान्त से अवगत होने जा रहे है।

भू-आकर्षण सिद्धान्त का अर्थ है- पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण शक्ति। इसके सन्दर्भ में प्राचीन एवं अर्वाचीन मत में मतान्तर भी हमें दिखलाई पड़ते है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यह विषय भी बड़ा ही रोचक एवं महत्वपूर्ण है।

अत: आइए इस इकाई में हम सभी भू-आकर्षण सिद्धान्त के गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

२.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- भू-आकर्षण सिद्धान्त की परिभाषा क्या है।
- सिद्धान्त ज्योतिष में भू-आकर्षण सिद्धान्त क्या है।
- भू-आकर्षण का अर्वाचीन मत क्या है।
- सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भू-आकर्षण सिद्धान्त क्या है।
- भू-आकर्षण सिद्धान्त का महत्व क्या है।

२.३ भू-आकर्षण सिद्धान्त

भू-आकर्षण का अर्थ है – गुरुत्वाकर्षण। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चौदहवीं शताब्दी में सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी ने पृथ्वी में आकर्षण शक्ति अथवा गुरुत्वाकर्षण शक्ति की बात अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में प्रतिपादित किया था, जबकि वर्तमान में इसका श्रेय पाश्चात्य चिन्तक आइजक न्यूटन को दिया जाता है। पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि दोनों के कालखण्ड में भी ५०० से ६०० वर्षों से अधिक का अन्तर है। ऐसा क्यों हुआ? यह विचारणीय है।

जब प्राचीन सिद्धान्तों का अनवरत् संचालन या परिष्कार नहीं किया जायेगा तो यह समस्या उत्पन्न होगी ही। नवीनता में प्राचीनता छूटते जायेगा तो भी परिणाम यही होगा। हम मूल से कटते चले जायेंगे तो भी यही होगा।

अत: हमें अपने प्राचीन धरोहर की रक्षा करनी होगी। साथ ही प्राचीन सिद्धान्तों का भी अध्ययन करना होगा। उसमें सतत् परिष्कार भी करते रहना होगा।

२.३.१ भू-आकर्षण क्या है?

भू-आकर्षण से तात्पर्य है – पृथ्वी का आकर्षण शक्ति। इसी आकर्षण शक्ति के आधार पर जब हम कोई वस्तु पृथ्वी से उपर आकाश की ओर फेंकते हैं, तो पृथ्वी उसे अपनी ओर आकृष्ट (खींचती) करती है। अर्थात् ऊपर जाती वह वस्तु पृथ्वी पर वापस गिरने लगती है। इसी आकर्षण शक्ति का नाम आज की भाषा में '**गुरुत्वाकर्षण**' सिद्धान्त है।

पृथ्वी-

जिस पर हम रहते हैं, किस आकार की है, इस विषय में प्राचीनकाल में दो मत प्रचलित थे। धार्मिक ग्रन्थों में इसे गोला तो माना गया था, किन्तु थाली के समान। ज्योतिषियों ने अनेक युक्तियों के साथ यह सिद्ध किया कि पृथ्वी गेंद के समान गोल है और इसी गेंद के समान गोलेपन के कारण पृथ्वी के पृष्ठ पर से ग्रहों की गतियों का आकलन सम्भव हो सका। धार्मिक ग्रन्थों में यह भी कहा गया था कि पृथ्वी कुछ ठोस पदार्थों पर रुकी हुई है। ज्योतिषियों ने इसको निराधार, इस आधार पर सिद्ध किया कि नक्षत्र चक्र पृथ्वी के चारों ओर निर्वाध घूमता है। इसलिए इसका कोई आधार नहीं हो सकता। गेंद के समान गोले होने में यह प्रमाण दिया गया कि जैसे जैसे मनुष्य उत्तर की ओर चलता है वैसे वैसे नक्षत्र मण्डल को अपने खमध्य या शिरोबिन्दु से नत देखता है, इसलिए पृथ्वी गेंद के समान गोल है।

भास्कराचार्य ने लिखा है:-

भपंजरस्य भ्रमणावलोकनादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः।

(सि. शि. गो. 7)

उदग्दिशं याति यथा यथानरस्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम्।
उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेस्तदन्तरे योजनजाः पलांशकाः।।

(सि. शि. गो. 49)

अर्थात् नक्षत्र-मण्डल का घूमना देखने से पृथ्वी का कोई आधार नहीं, ऐसा प्रतीत होता है। जैसे जैसे मनुष्य उत्तर दिशा में जाता है तैसे तैसे नक्षत्र-मण्डल को खमध्य से नत देखता है, और उत्तरी

धुरवतारे को उन्नत देखता है। इसलिए निरक्ष प्रदेश और अपने प्रदेश का जो योजनात्मक अन्तर होता है वह योजनात्मक अक्षांश हुआ। इसी योजनात्मक अक्षांश के द्वारा पृथ्वी की परिधि का भी मान लाया गया है। क्योंकि अपने स्थान की धुरवतारे की ऊंचाई का कोणात्मक मान अक्षांश ही है, इसलिए अनुपात के द्वारा पृथ्वी की परिधि का मान इस प्रकार होगा। अक्षांश के अंशों में यदि योजनात्मक अक्षांश मिलता है तो 360 में क्या=भू परिधि प्रमाण। इस प्रकार भूपरिधि का मान तथा उसका व्यासार्ध साधन कर ग्रहों की गतियों और उनकी दूरियों का मान रेखागणित की युक्ति से लाया गया था।

एक दूसरी बात पृथ्वी के सम्बन्ध में प्राचीन लोगों ने स्थिर की, वह है पृथ्वी का ब्रह्मण्ड के केन्द्र में होना। यह बात भी भौतिक विज्ञान के आधार पर सिद्ध की गई थी। हम देखते हैं कि पृथ्वी के ऊपर फेंके गये सभी गुरु पिण्ड पृथ्वी के केन्द्र की ओर खींच आते हैं और सुदूर प्रदेश में विद्यमान ग्रह नक्षत्र इसके चारों ओर घूमते रहते हैं, इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पृथ्वी का पिण्ड सभी आकशीय पिण्डों से भारी है। भास्कराचार्य ने लिखा है किः- 'खस्थं न दृष्टं हि गुरु क्षमताः' अर्थात् कोई भी आकाशीय पिण्ड पृथ्वी से भारी नहीं है। बौद्धों ने इसी तर्क के आधार पर यह सिद्ध किया कि पृथ्वी यदि आकाशीय पिण्डों में सबसे भारी है तो नीचे की ओर धँसती जायेगी, किन्तु ज्योतिषयों ने इस तर्क का खण्डन कर दिया तथा पृथ्वी को ब्रह्मण्ड के केन्द्र में स्वीकार किया। पृथ्वी की यह स्थिति ईश्वर-प्रदत्त उसकी नियन्त्रक शक्ति के कारण है ऐसा प्राचीन भारतीय ज्योतिषयों का विश्वास था। यूनानियों ने पृथ्वी पर से आकाश में फेंके गये पिण्ड का पृथ्वी पर गिरने का कारण पृथ्वी में विद्यमान आकर्षण शक्ति नहीं किन्तु सजातीय पिण्ड का सजातीय पिण्ड की ओर झुकावही है ऐसा माना था। आकर्षण के सम्बन्ध मेंर सर्वप्रथम न्यूटन ने पृथ्वी में आकर्षण-सिद्धान्त को स्वीकार किया जो भारतीय सिद्धान्त का अनुकरण है।

अब प्रश्न उठता है कि आकाशीय पिण्डों में दो प्रकार की गति दृष्टिगोचर होती है। एक प्रतिदिन पूर्व से पश्चिम की गति और दूसरी पश्चिम से पूर्व की ओर। इसका कारण क्या है ? इसके लिए दूसरी ईश्वी पूर्व शताब्दी (वी-सी) में हिपार्कस नामक यूनानी ज्योतिषी तथा पाँचवीं ईश्वी शती में भारतीय ज्योतिषी आर्यभट ने यह बताया कि पृथ्वी 24 घंटों या अहोरात्र में अपनी घूरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूम जाती है जिससे सभी नक्षत्र और ग्रह पूर्व से पश्चिम की ओर जाते दीख पड़ते हैं, किन्तु ग्रह अपनी गति से आकाश में पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं, परन्तु यह कथन पृथ्वी को अचल मानने वाले पुराणों और बायबिल आदि धर्म ग्रन्थों की उक्ति से मेल नहीं रखता। इसीलिए लोगों ने इसके लिए एक नई कल्पना यह प्रस्तुत की कि आकाश में एक प्रवह नामक वायु है जिसके

द्वारा सभी ग्रह नक्षत्रों का 24 घंटों में पूर्व से पश्चिम की ओर एक चक्कर लग जाता है। किन्तु ग्रह अपनी गति से पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं। आर्कमिटिज, अपोलोनियस, लल्ल, वराहमिहिर, टालमी आदि ने पृथ्वी के अपनी घूरी में घूमने में कुछ आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। यदि पृथ्वी घूमती है तो पक्षी अपना घोंसला कैसे पायेंगे। क्योंकि यदि वे 5 पाँच मिनट तक आकाश में उड़ते रहे तो पृथ्वी के चलने से उनका घोंसला 85 मील पूरब चला जायेगा। इसी प्रकार बादल आकाश में सदा पश्चिम की ओर जाते दिखाई पड़ेंगे। इन प्रश्नों का उत्तर 16वीं शताब्दी में कोपननिकस ने यह दिया कि पृथ्वी की केन्द्रीय आकर्षण शक्ति ऊपर की वस्तु को अपने साथ खींचती जायेगी, इसलिए उसे अपना घोंसला पाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। 290 ई. पू. अरिष्टार्कस और 15वीं शताब्दी में कोपरनिकस ने पृथ्वी में दो गतियाँ मानी। एक तो अपने अक्ष के ऊपर पश्चिम से पूर्व की ओर धुरवयष्टि के चारों ओर दैनिक गति और दूसरी वर्ष में सूर्य के चारों ओर घूमने वाली वार्षिक गति। इस प्रकार पृथ्वी की त्रिविध गति हुई, किन्तु आज का विज्ञान पृथ्वी में दैनिक और वार्षिक दोनों गति मानता है।

नारवे निवासी टाइकोब्राहे ने कोपरनिकस की कल्पना को अन्यथा रूप देकर पृथ्वी को स्थिर माना क्योंकि कोपरनिकस ने नक्षत्रों के वार्षिक लम्वन के द्वारा पृथ्वी की वार्षिक गति सिद्ध करने का प्रयास किया था। इसका तात्पर्य यह है कि किसी तारे का नवांश किसी नियत समय पर आज वेध कर लीजिए और उसके 6 महीने के बाद उसी समय पर उसी तारे का दूसरा वेध कीजिए तो दोनों नतांशों में कुछ अन्तर उपलब्ध होगा, क्योंकि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमने वाली अपनी कक्षा में पहले स्थान से दूसरे स्थान पर पृथ्वी और सूर्य की दूरी के दूने दूरी पर होगी। इसलिए प्रथम स्थान से तारे का जो नतांश उपलब्ध हुआ था दूसरे स्थान से उससे छोटा या बड़ा दिखाई पड़ेगा। इन दोनों नतांशों के अन्तर को नक्षत्र का वार्षिक लम्बर कहते हैं; किन्तु वेध कुशल टाइकोब्राहे ने अपने वेध से किसी तारे में लम्बर नहीं पाया, इसलिए उसने यह मत व्यक्त किया कि पृथ्वी स्थिर है, किन्तु सूर्य अपने चारों ओर बुध-शुक्र-शनि-मंगल और गुरु को घुमाते हुए पृथ्वी के चारों ओर साल भर में घूम आता है। म. म. पं. सुधाकर द्विवेदी ने भी धराभ्रम नामक अपने ग्रन्थ में टाइकोब्राहे के मत को ही माना है, किन्तु न्यूटन के बड़े पिण्ड में बड़ी आकर्षण शक्ति और छोटे पिण्ड में छोटी आकर्षण शक्ति के नियमानुसार सूर्य का पृथ्वी के चारों ओर घूमना सिद्ध नहीं होता। यों भी सूर्य के चारों ओर ग्रहों का घूमना मानने पर टाइकोब्राहे का मत सिद्ध नहीं होता। क्योंकि सूर्य से दूरी के क्रम से पृथ्वी मंगल शनि आदि और सूर्य के मध्य में ही पड़ जाती है।

२.३.२ भास्करीय आकर्षण सिद्धान्त का आविष्कार

हम देखते है कि डाली से अलग हुआ फल सीधी रेखा में भूतल पर आ गिरता है। वाण भी वेग के अभाव में भूतल पर ही आ जाता है। ये सभी पदार्थ पृथ्वी पर ही क्यों गिरते हैं। कौन सी वस्तु इन्हें गिराती है। इस प्रश्न का उत्तर यही है कि पृथ्वी उन्हें अपनी ओर खींचती है। पृथ्वी में विद्यमान आकर्षण शक्ति ही उन वस्तुओं को भूतल पर गिराती है। प्राचीन भारतीय आचार्य भी यह तथ्य इस भाषा में व्यक्त करते थे कि सम्पूर्ण आकाशीय पिण्ड ब्रह्मण्ड के केन्द्र की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। वह केन्द्र पृथ्वी का ही मध्य बिन्दु है। और इस घटना का कारण पृथ्वी में विद्यमान आकर्षण शक्ति को ही मानते थे। **भास्कराचार्य का आकर्षण सिद्धान्त –**

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

अर्थात् पृथ्वी में अपनी आकर्षण शक्ति के कारण, आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथ्वी की और स्वशक्ति से आकर्षित होकर उस पर गिरते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन यह पृथ्वी चारों ओर से आकाश से घिरी हुई होने के कारण कहाँ पर गिरेगी? अर्थात् यह अपने ही स्थान पर स्थित है, अपने विचित्र स्वाभाविक गुण के कारण। अत: पृथ्वी की इस आकर्षण शक्ति से भूमि का अधपतन और आकाश के नीचे स्थिति से नीचे गिरने की शंका निराधार है।

एक और भी अर्थ हो सकता है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति हैं जिससे आकाश में स्थित गुरु (भारी) पदार्थ उसके द्वारा खीचे जाने पर गिरता सा प्रतीत होता है। चारों ओर से सम आकाश में पृथ्वी कहाँ गिरेगी। किन्तु गुरु पदार्थो के आकर्षण का गणितीय स्वरूप क्या है। इसकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। इसके लिये संसार को न्यूटन के उद्भव की प्रतीक्षा करनी पड़ी। जिसने आकर्षण के गणितीय स्वरूप का पता लगाकर ब्रह्मण्ड के रहस्य को भी संसार के सामने प्रकट किया।

बहुत दिनों तक यह समझा जाता था कि पृथ्वी एक विलक्षण वस्तु है। गुरुत्व या भार केवल पार्थिव प्रकृति का ही हग्विषय है। जो आकाशीय पिंडों के लिये अकिंचित कर है। किन्तु कोपरनिक और उनके अनुयायी केप्लर के आविष्कारों ने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी एक सामान्य ग्रह है; जो अन्य ग्रहों के साथ ही सूर्य की परिक्रमा करती है। यह भी अन्य आकाशीय पिण्डों की भाँति ही एक आकाशीय पिंड है। इस सम्बन्ध में यह भी प्रमाणित हो गया कि आकर्षण एक व्यापक पदार्थ है, जो केवल पृथ्वी में ही नहीं है किन्तु सभी आकाशीय पिण्डों में है। तब यदि पृथ्वी के पार्श्ववत्तों पिण्ड भूकेन्द्र की ओर उन्मुख होते हैं; तो चन्द्रमा पर या अन्य किसी भी आकाशीय पिण्ड के ऊपर के सभी पिण्ड उनके अपने केन्द्र की ओर अवश्य ही उन्मुख होंगे। दूसरे शब्दों में कहा जायेगा कि वे पदार्थ उन आकाशीय पिण्डों द्वारा आकृष्ट होते हैं।

कोपरनिकस और केप्लर ने स्पष्ट रूप से यह माना कि आकाशीय पिण्ड आकर्षणशक्ति सम्पन्न हैं। इससे दोनों ने यह भी निर्धारित किया कि यह आकर्षण सम्पत्ति आकाशीय पिण्डों को परस्पर सम्मेलन की ओर प्रवृत्त करती है।

२.३.३ वर्तमान में प्रचलित भू- आकर्षण अथवा गुरुत्वाकर्षण -

एक पदार्थ द्वारा दूसरे की ओर आकृष्ट होने की प्रवृत्ति है। इसे आंग्ल भाषा में *Gravitation* कहते है। गुरुत्वाकर्षण के बारे में पहली बार कोई गणितीय सूत्र देने की कोशिश आइजक न्यूटन द्वारा की गयी थी। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत का प्रतिपादन किया। न्यूटन के सिद्धान्त को बाद में अल्बर्ट आइंस्टाइन द्वारा सापेक्षता सिद्धांत से बदला गया। इससे पूर्व वराहमिहिर ने कहा था कि किसी प्रकार की शक्ति ही वस्तुओं को पृथ्वी पर चिपकाए रखती है।

गुरुत्वाकर्षण ब्रह्माण्ड में मौजूद चार मौलिक बलों में से एक बल है। यह अंतरिक्ष में मौजूद द्रव्यमान वाली सभी चीजों के बीच एक लंबी दूरी का आकर्षण बल है। इसकी वजह से ही चीजों को वजन प्राप्त होता है। पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण निरंतर प्रति सेकंड 9.8 वर्ग मीटर (9.8 m/s2) जितना होता है। यह हमें पृथ्वी के बाहर गिरने से बचाता है और पृथ्वी को अपनी सूर्य की आसपास की कक्षा में बनाए रखता है। गुरुत्वाकर्षण की वजह से ही साढ़े चार अरब साल पहले पृथ्वी और सूरज की उत्पति हुई थी। यह आश्चर्यजनक बात है कि ब्रह्माण्ड में हर भारी वस्तु दूसरी चीजों को अपनी ओर आकर्षित करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा घर, पृथ्वी, 25 लाख प्रकाश वर्ष दूर एंड्रोमेडा आकाशगंगा में स्थित ब्लैकहोल, यह सभी आपसे गुरुत्वीय बल से आकर्षित हैं और आप उनसे।[1]

महान वैज्ञानिक आइजेक न्यूटन ने 17वीं सदी में पता लगाया कि दो वस्तुओं के बीच की दूरी के वर्ग जितने अंतर पर गुरुत्वाकर्षण बल की ताकत घटती है, तो यदि आप किसी भी चीज से दोगुना अंतर पर होंगे, तब गुरुत्वाकर्षण एक चौथाई जितना ही मजबूत होगा। उन्होंने यह भी पता लगाया की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति वस्तु के द्रव्यमान के अनुपात में होती है। अर्थात् पदार्थ जितना बड़ा होगा, उसका गुरुत्वाकर्षण बल उतना ही मजबूत होगा।

हम सब पृथ्वी का खिंचाव महसूस कर सकते हैं, लेकिन चन्द्रमा के खिंचाव को महसूस नहीं कर पाते, क्योंकि चन्द्रमा छोटा हैं और हम से बहुत ही दूर है। लेकिन उसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी पर समुद्र में ज्वार पैदा करने के लिए सक्षम है। चंद्रमा पर गुरुत्वाकर्षण बल पृथ्वी पर मौजूद गुरुत्वाकर्षण बल से 16 प्रतिशत जितना है और मंगल ग्रह का पृथ्वी से 38 प्रतिशत जितना है, जबकि सौरमंडल के सबसे बड़े ग्रह गुरु का गुरुत्वाकर्षण बल पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल से 2.5 गुना है।

कोई भी वस्तु ऊपर से गिरने पर सीधी पृथ्वी की ओर आती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई अलक्ष्य और अज्ञात शक्ति उसे पृथ्वी की ओर खींच रही है। इटली के वैज्ञानिक, गैलिलीयो गैलिलीआई ने सर्वप्रथम इस तथ्य पर प्रकाश डाला था कि कोई भी पिंड जब ऊपर से गिरता है तब वह एक नियत त्वरण से पृथ्वी की ओर आता है। त्वरण का यह मान सभी वस्तुओं के लिए एक सा रहता है। अपने इस निष्कर्ष की पुष्टि उसने प्रयोगों और गणितीय विवेचनों द्वारा की है। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का नियम इसके बाद सर आइज़क न्यूटन ने अपनी मौलिक खोजों के आधार पर बताया कि केवल पृथ्वी ही नहीं, अपितु विश्व का प्रत्येक कण प्रत्येक दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। दो कणों के बीच कार्य करनेवाला आकर्षण बल उन कणों की संहतियों के गुणनफल का (प्रत्यक्ष) समानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। कणों के बीच कार्य करनेवाले पारस्परिक आकर्षण को गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) तथा उससे उत्पन्न बल को गुरुत्वाकर्षण बल (Force of Gravitation) कहा जाता है। न्यूटन द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त नियम को न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम (Law of Gravitation) कहते हैं। कभी-कभी इस नियम को "गुरुत्वाकर्षण का प्रतिलोम वर्ग नियम" (Inverse Square Law) भी कहा जाता है। उपर्युक्त नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: मान लिया m1 और संहति वाले m2 दो पिंड परस्पर d दूरी पर स्थित हैं। उनके बीच कार्य करनेवाले बल F का मान होगा:;

गुरुत्वाकर्षण के कारण ही ग्रह, सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा पाते हैं और यही उन्हें रोके रखती है। गुरुत्वाकर्षण (ग्रैविटेशन) एक पदार्थ द्वारा एक दूसरे की ओर आकृष्ट होने की प्रवृति है। गुरुत्वाकर्षण के बारे में पहली बार कोई गणितीय सूत्र देने की कोशिश आइजक न्यूटन द्वारा की गयी जो आश्चर्यजनक रूप से सही था। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत का प्रतिपादन किया। न्यूटन के सिद्धान्त को बाद में अलबर्ट आइंस्टाइन द्वारा सापेक्षता सिद्धांत से बदला गया। इससे पूर्व वराह मिहिर ने कहा था कि किसी प्रकार की शक्ति ही वस्तुओं को पृथिवी पर चिपकाए रखती है। .

गुरुत्वाकर्षण के कारण ही ग्रह, सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा पाते हैं और यही उन्हें रोके रखती है। गुरुत्वाकर्षण (ग्रैविटेशन) एक पदार्थ द्वारा एक दूसरे की ओर आकृष्ट होने की प्रवृति है। गुरुत्वाकर्षण के बारे में पहली बार कोई गणितीय सूत्र देने की कोशिश आइजक न्यूटन द्वारा की गयी जो आश्चर्यजनक रूप से सही था। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत का प्रतिपादन किया। न्यूटन के सिद्धान्त को बाद में अलबर्ट आइंस्टाइन द्वारा सापेक्षता सिद्धांत से बदला गया। इससे पूर्व वराह मिहिर ने कहा था कि किसी प्रकार की शक्ति ही वस्तुओं को पृथिवी पर चिपकाए रखती है। . कोई भी वस्तु ऊपर से गिरने पर सीधी पृथ्वी की ओर आती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई अलक्ष्य और अज्ञात शक्ति

उसे पृथ्वी की ओर खींच रही है। इटली के वैज्ञानिक, गैलिलीयो गैलिलीआई ने सर्वप्रथम इस तथ्य पर प्रकाश डाला था कि कोई भी पिंड जब ऊपर से गिरता है तब वह एक नियत त्वरण से पृथ्वी की ओर आता है। त्वरण का यह मान सभी वस्तुओं के लिए एक सा रहता है। अपने इस निष्कर्ष की पुष्टि उसने प्रयोगों और गणितीय विवेचनों द्वारा की है। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का नियम इसके बाद सर आइज़क न्यूटन ने अपनी मौलिक खोजों के आधार पर बताया कि केवल पृथ्वी ही नहीं, अपितु विश्व का प्रत्येक कण प्रत्येक दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। दो कणों के बीच कार्य करनेवाला आकर्षण बल उन कणों की संहतियों के गुणनफल का (प्रत्यक्ष) समानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। कणों के बीच कार्य करनेवाले पारस्परिक आकर्षण को गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) तथा उससे उत्पन्न बल को गुरुत्वाकर्षण बल (Force of Gravitation) कहा जाता है। न्यूटन द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त नियम को न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम (Law of Gravitation) कहते हैं। कभी-कभी इस नियम को "गुरुत्वाकर्षण का प्रतिलोम वर्ग नियम" (Inverse Square Law) भी कहा जाता है। उपर्युक्त नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: मान लिया m1 और संहति वाले m2 दो पिंड परस्पर d दूरी पर स्थित हैं। उनके बीच कार्य करनेवाले बल F का मान होगा:

उन्होंने पाया कि किसी पिंड का त्वरण पृथ्वी की ओर उसकी पृथ्वी से दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है (inversely proportional to the square of distance between them.) यह त्वरण उस पिंड और धरती के भार के भी समानुपाती (प्रोपोर्शनल) है। जिससे हमें सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त मिला –

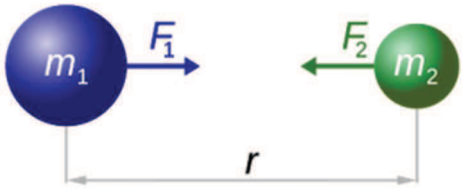

$$F_1 = F_2 = G\frac{m_1 \times m_2}{r^2}$$

F 1 गुरुत्वाकर्षण बल है, r धरती और पिंड के बीच की दूरी, m1, m2 धरती और पिंड का भार, और G सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण कांस्टेंट, जिसका मूल्य 6.67*10^(-11) है।

यह मूल्य इस कानून के 71 वर्ष बाद हेनरी कैवेंडिश द्वारा ' कैवेंडिश प्रयोग' में पाया गया।

इसके बाद इस कानून का सामान्यीकरण कर दिया गया और ये बताया गया कि किसी भी दो पिंडो के मध्य गुरुत्वाकर्षण बल लगता है।

गुरुत्वाकर्षण से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य (Important facts related to gravitation in hindi)

1. G का मूल्य पूरे ब्रह्मांड में समान है। यह दूसरे आकाशीय पिंडों के लिए भी नहीं बदलता। इसी कारण इसे सार्वत्रिक कहा गया है।
2. पृथ्वी के ओर लगने वाले त्वरण को 'g' से संबोधित करते हैं, और इसका मूल्य 9.8 m/s^2 है। यह पृथ्वी के मध्य की ओर केंद्रित है।
3. g को धरती की सतह के आस-पास समान माना जाता है।
4. परंतु यदि सतह से काफी ऊपर या नीचे जाएँ, तब g का मूल्य 9.8 से थोड़ा घट जाता है।
5. गुरुत्वाकर्षण एक कमज़ोर बल (weak force) है। दुनिया मे चार तरह के बलों को पहचाना गया है, जिनमें गुरुत्वाकर्षण सबसे कमजोर है।
6. गुरुत्वाकर्षण दीर्घ रेंज का बल है। यानी इसका असर लंबी दूरियों तक होता है।
7. सारे ग्रह और उपग्रह धरती और सूर्य के चारो ओर गुरुत्वाकर्षण के कारण ही घूम पाते हैं।

केप्लर ने अपने ग्रन्थ में लिखा है किः-

''आकर्षण दो सजातीय पदार्थो का वह पारस्परिक खिंचाव है जो उन्हें मिलने की ओर प्रवृत्त करता है। न केवल छोटे पदार्थ किन्तु गुरुतर पिण्ड भी जिनमें पृथ्वी भी है, इसकी ओर अपनी विशेषताओं के कारण सदा जाने के लिए प्रवृत्त होते हैं। यदि दो पत्थर ब्रह्मण्ड के किसी प्रदेश में एक दूसरे के पास ही अलग-अलग फेंक दिये जायें; जो किसी उनसे सम्बद्ध तीसरे पिण्ड के आकर्षण क्षेत्र के बाहर हो तो वे दोनों पत्थर चुम्बक की भाँति एक दूसरे के पास आ जायेंगे।'' अब आकाशीय पिण्डों के इस विशिष्ट आकर्षण के कारण उनके आन्तरिक क्रियाशीलता का प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक था।

आकर्षण की इस विशेषता से कोपरनिकस के द्वारा आविष्कृत सौर परिवार की संरचना, यह दिखलाती है कि सूर्य सौर परिवार के सदस्यों की संस्था के केन्द्र में है और वह उनकी गति के लिये एक नियत अभिनय का सूत्रधार है। यह मानते हुए कि सूर्य और ग्रह सभी आकर्षण शक्ति वाले हैं,

कोपरनिकस ने ग्रहों के ऊपर सूर्य के प्रभाव की सत्यता को स्वीकृत किया। ग्रहगति के विषय में सूर्याकर्षण की नियत क्रियाशीलता केप्लर के तीनों नियमों में स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई थी। केप्लर स्वयं यह विश्वास करते थे कि ग्रहों की गति सूर्य के द्वारा नियन्त्रित होती है। उन्होंने आकर्षण के सम्बन्ध में साधिकार स्पष्ट घोषण की थी किः-

''आकाश स्थित दो पिण्ड एक दूसरे की ओर चुम्बक की भाँति प्रवृत्त होते हैं।'' केप्लर के अनुसार ग्रहगति के लिये आकर्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है तथा यह ग्रहों को सूर्य की ओर ले जाता है। किन्तु केप्लर का दृष्टिकोण इस प्रश्न के विषय में पूर्णतया तथ्य नहीं था। क्योंकि वे मानते थे कि सूर्य ग्रहों को चुम्बक की तरह खींचता है और इसी कारण उन्हें अपने चारों ओर घुमाता है।

गेलेलियो के सिद्धान्तः-

केप्लर के बाद ''ग्रहों के पारस्परिक आकर्षण तथा गति से सम्बन्धित धारणाओं का विकास यान्त्रिक सिद्धान्तों के आविष्कारों पर निर्भर है।'' विज्ञान गेलिलियो के इन अनुसन्धानों का ऋृणी है। जिनसे कि पार्थिव पिण्डों की गति से सम्बन्धित दो हजार वर्ष की प्राचीन भ्रान्त धारणाओं को परिवर्तित कर दिया और यान्त्रिक सिद्धान्तों का शिलान्यास किया जो आज भी व्यवहृत हो रहे हैं।

गेलिलियो से पहले यह धारणा प्रधान थी कि कोई भी पिण्ड उतना ही गतिशील हो सकता है जितना कि उस पर बल का प्रयोग होगा और बल प्रयोग के अभाव में पिण्ड स्थिर रहेंगे। ये धारणायें हमारे जीवन के दैनिक घटनाओं में ऐसी सत्य सी प्रतीत हो रही है कि बहुत दिनों तक इनके विषय में कोई शंकर ही नहीं उठ सकी। यह गेलेलियो की ही बुद्धिमत्ता है कि उसने सर्वप्रथम इन्हें भ्रान्त दिखलाया।

गेलिलियो ने ही आकर्षाण् की व्यापकता को सिद्ध किया। उसके अनुसार किसी भी पिण्ड के चारों ओर आकर्षण का व्यापार वैसे ही होता है जैसे प्रकाश प्रकाशक वस्तु के चतुर्दिक फैलता है। किन्तु बड़े पिण्ड में ही बड़ी आकर्षण शक्ति होने के कारण छोटे पिण्ड के आकर्षण का प्रभाव उस पर नहीं के बराबर होता है। फलतः भूपिण्ड के ऊपर पार्थिव पिण्डों के आकर्षण प्रभावहीन होते हैं। गेलिलियो ने एक चिकने लम्बे पटरे को ऊँची दीवाल पर झुकाकर उस पर एक चिकने धातु के गोले को ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर लुढ़का कर प्रति सेकेण्ड उसकी गतिवृद्धि और गतिह्रास जानने के लिये अनेक प्रयोग किया। तब यदि गोले को ऊपर की ओर लुढ़काया जाता तो वह धीरे-धीरे स्थिर होकर प्रतिक्षण वर्धनशील वेग से नीचे की ओर गिरना आरम्भ करता। यदि पटरे का झुकाव कम कर दिया जाता तो गोला अपनी ऊर्ध्वगति में कम विलम्ब करता था और नीचे गिरने में उसकी

वेग वृद्धि कम होती थी, और यदि पटरे को ठीक क्षैतिज स्थिति में रखा जाता तब न तो स्थिर होता और न उसके वेग में वृद्धि ही होती। किन्तु बहुत देर तक वह समान गति से आगे बढ़ता चलता रहता। इससे गेलेलियो के ही शब्दों से यह तथ्य अवगत हुआ कि यदि कोई पिण्ड क्षैतिज स्थिति में गतिशील हो तो वह समान गति से बिना किसी रुकावट के बढ़ता जायेगा। यह गति समान तथा बिना समाप्ति के निरन्त होगी, यदि समतल अपने अवकाश में निरन्त बढ़ता जाय।

यद्यपि क्षैतिज धरातल पर इस प्रकार का प्रयोग असम्भव है क्योंकि गोला, पटरे के घर्षण और पृथ्वी के आकर्षण के कारण स्थिर हो ही जायेगा। गेलेलियो ने यह जानकर भी उपर्युक्त मत का प्रतिपादन किया, यह उनकी उत्कट बुद्धिशीलता का परिचायक है। आगे चलकर न्यूटर ने इसी सिद्धान्त का अनुसरण कर केप्लर के द्वितीय नियम की उपपत्ति कैसे प्रस्तुत की यह आगे बताया जायेगा। न्यूटन ने भी अपने गति सम्बन्धी नियम में इसी तथ्य को स्वीकार किया है। उसके अनुसार यदि पिण्ड पर किसी अन्य बल का प्रभाव न हो तो वह समान गति से सरल रेखा में गतिशील होगा। किसी बल प्रयोग के अभाव में पिण्ड का समान गति से सरल रेखा में गमन आरम्भिक गति के नाम से प्रसिद्ध है।

गेलिलियो का अनुसन्धान ग्रहगति के कारण पर पूर्णतया एक भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। केप्लर ने ग्रहगति की उपपत्ति के लिए एक संघट्टक (धक्का देने वाले) बल की कल्पना की थी। वह अब अनावश्यक हो गयी थी, क्योंकि ग्रह इसके बिना ही केवल आरम्भिक गति (आद्यवेग) द्वारा ही गतिशील होता था। ग्रह के ऊपर प्रयुक्त बल केवल उसकी गति की विशेषताओं को ही बतला सकता है। उनकी गतिक्रिया की उपपत्ति के लिये वह तथ्य वास्तविक कारण नहीं हो सकता। किन्तु इनर्शिया का सिद्धान्त ही ग्रहगति और आकर्षण के स्थिर सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से बतलाने के लिये सम्भव हो सका।

पहले बताये गये चिकने पटरे और गोले के प्रयोग में उसने यह सिद्ध किया था कि ऊपर से लुढ़कता हुआ गेंदा प्रति सेकेण्ड आरम्भ स्थान से जितनी दूरी तय करता है वे 1, 4, 9, 16 आदि के समानुपाती होती है। फिर पटरे के झुकाव के कोण के अनुसार गणना करके वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि लुढ़कते गेंद की भूगर्भाभिमुख लम्ब रूप दूरी आरम्भ स्थान से क्रमशः 1, 4, 9, 16 आदि गुनी होती है। अर्थात् प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ सेकण्डों में उनका मान क्रमशः 16, 64, 144, 256 फीट है।

२.४ आकर्षण नियम का सत्यापन

चन्द्रमा हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है। उसकी गति के सम्बन्ध में गेलिलियों के अनुसंधान द्वारा उपलब्ध पार्थिवपिण्डों के आकर्षण के सिद्धान्त की उपादेयता को न्यूटन ने गणना के द्वारा सिद्ध किया और इस नियम से न केवल पार्थिव किन्तु अन्य खगोलीय पिण्डों की गतियों के विषय में भी एक ही नियम का प्रतिपादन किया। चन्द्रगति से सम्बन्धित न्यूटन की गणना निम्न प्रकार की है।

कल्पना करें कि नीचे दिए गए चित्र में चं व म वृताकार चन्द्रमा की कक्षा है। भू पृथ्वी उसके केन्द्र में है। चं चन्द्र बिम्ब के ऊपर पृथ्वी के आकर्षण की दिशा भूकेन्द्र की ओर है। इसे त्रैज्यिक बल कहते हैं। तथा चं चन्द्रबिम्ब की गति दिशा चं र वृत्त की स्पर्श रेखा की ओर है। इसे स्पार्शिक बल कहते हैं, अब गेलिलियों के गति विज्ञान सम्बन्धी नियम के अनुसार चन्द्र बिम्ब की गति चं. व रेखा की दिशा में होगी। मान लें कि चन्द्रमा एक सेकेण्ड में अपनी गति दिशा में चं र तुल्य चला और उसी सेकेण्ड में पृथ्वी चन्द्रबिम्ब को चं ल के तुल्य अपने केन्द्र की ओर खींच ली। तब पृथ्वी का आकर्षण प्रबल होने के कारण वेगों के समानान्तर चतुर्भुज के नियमानुसार चन्द्रमा की गति चं बिन्दु से व बिन्दु पर होगी। अर्थात् चं. ल = र व के तुल्य चन्द्रमा खींच आयेगा। जिससे चन्द्रमा की गति चं व कर्ण रेखा में होगी। यही बात प्रत्येक सेकेण्ड में होती रहेगी।

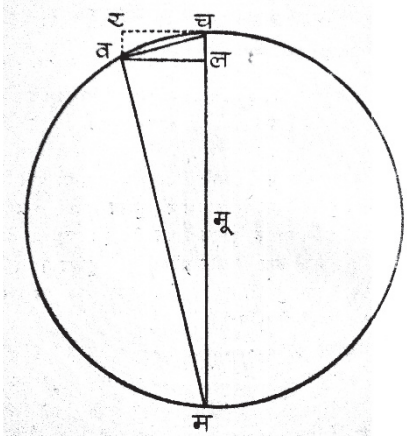

जिससे चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमने के लिए विवश होगा। अब हम पृथ्वी के आकर्षण चं ल का मान लाते हैं। चं ब म और चं व ल दोनों समकोण त्रिभुजों के सजातीय होने से चं ल = चं $व^{२}$ / चं म

= चं. व^{२} /२ त्रि, इसीलिए २ चं ल = चं व^{२} / त्रि = आकर्षण = त्वरण। पहले कहा जा चुका है कि काल की लघुतम इकाई में जितना पतन होता है उससे दूना आकर्षण (त्वरण) होता है।

इस परिणाम के अनुसार भूपृष्ठ पर का भार (गुरुत्व) और चन्द्रमा की गति ये दोनों ही एक ही आकर्षण बल के कारण उत्पन्न होते हैं। वह बल जिसके द्वारा पृथ्वी सम्पूर्ण पदार्थों को अपने केन्द्र की ओरर खींचती है। भूकेन्द्र से पदार्थ की दूरी के वर्ग का विलोम रूप से समानुपाती है। इसलिये पृथ्वी का गुरुत्व वह बल है जिसके द्वारा पृथ्वी उन पिण्डों को खींचती है।

न्यूटन ने यह परिणाम केप्लर के ग्रहगति सम्बन्धी सिद्धान्तों से ही निकाला था। इसलिये पहले हम स्मरणार्थ केप्लर के सिद्धान्तों की प्रस्तुत कर उनके अनुसारी न्यूटन के गति सम्बन्धी तीनों नियमों को प्रस्तुत करेंगे। तब फिर न्यूटन के द्वारा अपने गति सिद्धान्तों के आधार पर की गयी केप्लर के तीनों नियमों की उपपत्ति भी प्रस्तुत करेंगे।

२.४.१ केप्लर के नियम

केप्लर के ये तीन नियम कहे गये हैं-

प्रथम नियम:- सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हुए अपने भ्रमण पथ से दीर्घ वृत्ताकार कक्षा बनाते हैं जिसकी एक नाभि में सूर्य होता है।

द्वितीय नियम:- ग्रह अपने दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में सूर्य केन्द्र में गये अपने मन्दकणों से समान काल में समान क्षेत्रफल आक्रान्त करता है।

तृतीय नियम:- किन्हीं दो ग्रहों के प्रदक्षिणा (भगणपूर्ति) काल के वर्गों में जो सम्बन्ध है वही उनके सूर्य से मध्यम दूरियों के घनों में भी होता है।

न्यूटन को केप्लर के प्रथम और द्वितीय सिद्धान्तों ने यह प्रमाणित करने के लिए समर्थ बनाया कि ग्रह, ऐसे बल द्वारा नियन्त्रित होकर चल रहा है जो उसे सदा सूर्यकेन्द्र की दिशा में प्रेरित करता है और सूर्य से ग्रह की दूरी के वर्ग का विपरीत क्रम से समानुपाती होता है। न्यूटन ने केप्लर के तृतीय नियम से यह प्रेरणा ग्रहण की कि ग्रहों की गतियों के पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार के हैं, जिनसे कि वह विश्वव्यापी आकर्षण सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये सक्षम हो सका, जिसके द्वारा परमाणुओं से लेकर महत्तम ग्रहपिण्ड तक गति के लिये एक ही नियम की व्यापकता स्थिर की जा सकी।

२.४.२ न्यूटन के तीन नियम -

पिण्डों की गति सम्बन्धी न्यूटन के तीन नियम उसके नाम के साथ प्रसिद्ध है -

प्रथम नियम:- कोई भी पिण्ड या तो विराम की स्थिति में होता है अथवा सरल रेखा में समान गति से गतिशील होता है, जब तक कि गति परिवर्तन के लिये उसके ऊपर किसी बाहरी बल का दबाव न पड़े।

द्वितीय नियम:- पिण्ड में गति परिवर्तन (त्वरण) पीडक (दबाव डालने वाले) बल का समानुपाती होता है और प्रयुक्त बल की दिशा में सीधी रेखा में अपना स्थान ग्रहण करता है।

तृतीय नियम:- प्रत्येक क्रिया में उसके तुल्य ही विपरीत प्रतिक्रिया होती है अथवा दो पिण्डों में परस्पर आकर्षण सदा तुल्य और विपरीत दिशा में होता हैं।

गति सम्बन्धी ये तीनों नियम पार्थिव पिण्डों के प्रयोग के अनुकूल आविष्कृत हुए थे और पृथ्वी तल पर के पिण्डों की गतियों के अध्ययन के लिये आधारभूत थे, किन्तु न्यूटन ने इन्हें खगोलीय पिण्डों की गतिविधि के लिये प्रयुक्त किया और इसमें संदेह नहीं कि खगोलीय पिण्ड भी उन्हीं नियमों के विषय थे जिनके पार्थिव पिण्ड।

न्यूटन ने निम्नांकित कारण देते हुए इस तर्क का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया किर शनि अथवा गुरु की भाँति पृथ्वी के भी कई चन्द्रमा (उपग्रह) होते तो भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति जो उन्हें अपनी अपनी कक्षाओं में स्थित रखती, भू केन्द्र से उनकी दूरी के वर्ग की ही समानुपाती होती। अब यदि इन उपग्रहों में किसी की कक्षा पृथ्वी के सबसे ऊँचे पहाड़ की चोटी को स्पर्श करते हुए जाती तो वह आकर्षण बल जो उसे अपनी कक्षा में आघृत रखता उस उपग्रह के ऊपर क्रियाशील बल का 3640 गुना होता, तथा उसकी गति स्थूल रूप से 0.230 ग 3640 सेमी0 त्र 1.9 मी0 प्रति सेकेण्ड होती। अन्य पार्थिव पिण्डों की भाँति यह उपग्रह भी भू केन्द्र की ओर 1.9 मीटर की समान वेगवृद्धि वाले गुरुत्व का होता। यदि उपग्रह के गुरुत्वाकर्षण का बल जो उसकी कक्षा में है भिन्न रूप का होगा तो उसकी वेगवृद्धि दो वेगों का मिश्रण होगी। एक तो गुरुत्वाकर्षण बल के कारण और दूसरा उपग्रह की गति को नियन्त्रित करने वाले बल के कारण।

किन्तु भूतल पर कहीं भी गिरते हुए पिण्डों की वेगवृद्धि 19.6 मीटर नहीं है अपिच 1.9 मी0 के ही तुल्य है। किन्तु वह आकर्षण बल जो चन्द्रमा को अपनी कक्षा में नियन्त्रित किये है, यह वही बल है जिसे पृथ्वी पर भार या गुरुत्व कहते हैं। किन्तु पृथ्वी पर उपग्रह का आकर्षण अत्यन्त कम होता है। इसी कारण उसके परिणाम की उपेक्षा की जाती है।

इसके आगे हमें इस निष्कर्ष का भी संकेत मिलता है कि सूर्य के चारों ओर घूमने वाले बुध शुक्र पृथ्वी आदि सभी ग्रह तथा मंगल बृहस्पति शनि की प्रदक्षिणा करने वाले इनके चन्द्रमा या उपग्रह और पृथ्वी की परिक्रमा करने वाला चन्द्रमा ये सभी संघटनायें विश्वव्यापी आकर्षण जन्य ही

हैं। सभी ग्रह और उपग्रह अपनी गतियों को एक ऐसे बल द्वारा प्राप्त करते हैं जो उनके परिक्रामक पिण्ड के केन्द्र की दिशा में क्रियाशील होता है। वह बल इन पिण्डों को इस प्रकार आकृष्ट करता है कि ये अपने परिक्रामक के केन्द्र से अपनी दूरी के वर्ग के समानुपात से ह्रसित होते हुए गतिशील होते हैं। ये परिक्रामक पिण्ड आकर्षण धर्मा हैं जिससे वे अन्य खगोलीय पिण्डों को अपनी ओर खींचते हैं। तात्पर्य यह है कि सभी (द्रव्यीय) पिण्ड गुरुत्वशाली हैं। अतः यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि सूर्य भौम गुरु शनि शुक्र बुध ये भी गुरुत्व को धारण करने वाले हैं।

न्यूटन के तृतीय नियम से यह अवगत होता है कि आकर्षण पारस्परिक धर्म है अतः यदि स्वयं सूर्य ग्रहों को अपनी ओर खींचता है तो ग्रह भी स्वयं सूर्य को अपनी ओर खींचते हैं। यदि पृथ्वी चन्द्रमा को अपनी ओर आकृष्ट करती है तो चन्द्रमा भी पृथ्वी को खींचता है। अथवा यदि पार्थिव पिण्डों को पृथ्वी अपनी ओर खींचती है तो पार्थिव पिण्ड भी स्वयं पृथ्वी को आकृष्ट करते हैं। निष्कर्ष यह है कि आकर्षण प्रकृति का प्राकृतिक धर्म है। यह केवल खगोलीय पिण्डों तक ही सीमित नहीं है। किन्तु सामान्य रूप से सभी द्रव्यीय पिण्डों में और सभी कणों में अणुओं में इसकी सत्ता है, जो परस्पर आकर्षण के लिए क्रियाशील रहते हैं। अतः प्रश्न यह है कि जब दो परस्पराकर्षी पिण्डों की दूरी घटती है तो बल का मान बढ़ता है और जब दूरी बढ़ती है तो वह घटता है। फिर भी प्रश्न उठता है कि वह कौन सी वस्तु है जो बल के मान को परिवर्तित करती है।

न्यूटन ने अत्यन्त सरलता से इसे सिद्ध किया है कि आकर्षण का बल पिण्ड की संहति का कार्य है। बड़े पिण्ड में बड़ा आकर्षण बल और छोटे पिण्ड में छोटा आकर्षण बल होता है। फलतः बड़ा पिण्ड छोटे पिण्ड को खींचने का प्रयत्न करता है। न्यूटन का द्वितीय नियम यह बतलाता है कि वेगवृद्धि (त्वरण) त्व = ब/ मा होता है। इसमें ब बल और मा पिण्ड की संहति है। पृथ्वी सभी पिण्डों को 1.8 मी0 प्रति सेकण्ड के त्वरण से ही आकृष्ट करती है यह गोलिलियो के प्रयोग से सिद्ध ही है।

तृतीय नियम -

किन्तु न्यूटन का तृतीय गति नियम कहता है कि कोई पिण्ड जब दूसरे पिण्ड को आकृष्ट करता है। तो वह स्वयं भी दूसरे पिण्ड द्वारा उसी बल से आकृष्ट होता है। इसके अनुसार ख और ग पिण्ड भी क पिण्ड को बल (क ख) और बल (क ग) के तुल्य बलों के द्वारा आकृष्ट करेंगे, जो उनके पिण्डों की संहतियों के समानुपाती होंगे। अतः आकर्षण केवल आकर्षक पिण्डों की संहतियों के समानुपाती होते हैं। वास्तव में पिण्डों के इसी परस्पराकर्षण के कारण न्यूटन अपने विख्यात ब्रह्मण्डीय गुरुत्वाकर्षण नियम को प्रतिपादित कर सके।

बोध प्रश्न : -

1. ज्योतिष के अनुसार भू-आकर्षण सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया था।

   क. भास्कर ने ख. कोपरनिकस ने ग. न्यूटन ने घ. केप्लर ने

2. 'भू' का शाब्दिक अर्थ होता है –

   क. धरा ख. पृथ्वी ग. मही घ. उपर्युक्त सभी

3. सिद्धान्तशिरोमणि निम्न में से किसकी रचना है।

   क. वराहमिहिर की ख. आर्यभट की ग. भास्कर घ. गणेश

4. पाश्चात्य मत में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त किसने बताया।

   क. कोपरनिकस ने ख. भास्कर ने ग. न्यूटन ने घ. केप्लर

5. न्यूटन के द्वारा निम्न में किसका नियम प्रतिपादित किया गया था।

   क. गति ख. उर्जा ग. द्रव्य घ. पदार्थ

6. गति के कितने नियम है।

   क. २ ख. ३ ग. ४ घ.५

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि -आकर्षण का अर्थ है – गुरुत्वाकर्षण। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चौदहवीं शताब्दी में सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी ने पृथ्वी में आकर्षण शक्ति अथवा गुरुत्वाकर्षण शक्ति की बात अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में प्रतिपादित किया था, जबकि वर्तमान में इसका श्रेय पाश्चात्य चिन्तक आइजक न्यूटन को दिया जाता है। पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि दोनों के कालखण्ड में भी ५०० से ६०० वर्षों से अधिक का अन्तर है। ऐसा क्यों हुआ? यह विचारणीय है। जब प्राचीन सिद्धान्तों का अनवरत् संचालन या परिष्कार नहीं किया जायेगा तो यह समस्या उत्पन्न होगी ही। नवीनता में प्राचीनता छूटते जायेगा तो भी परिणाम यही होगा। हम मूल से कटते चले जायेंगे तो भी यही होगा। भू-आकर्षण से तात्पर्य है – पृथ्वी का आकर्षण शक्ति। इसी आकर्षण शक्ति के आधार पर जब हम कोई वस्तु पृथ्वी से उपर आकाश की ओर फेंकते हैं, तो पृथ्वी उसे अपनी ओर आकृष्ट (खींचती) करती है। अर्थात् ऊपर जाती वह वस्तु पृथ्वी पर वापस गिरने लगती है। इसी आकर्षण शक्ति का नाम आज की भाषा में **'गुरुत्वाकर्षण'** सिद्धान्त है।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

भू -आकर्षण – गुरुत्वाकर्षण

भू - पृथ्वी

अकृष्ट – खींचना

पतित – गिरना

आकर्षण शक्ति – गुरुत्वाकर्षण शक्ति

समानुपाती – समान अनुपात में

त्वरण – वेग परिवर्तन की दर को त्वरण कहते है।

२.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क

1. घ
2. ग
3. ग
4. क
5. ख

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा

2. ग्रहगति का क्रमिक विकास – मूल लेखक – पं. रामजन्म मिश्र

3. आर्यभट्टीयम् – मूल लेखक – आर्यभट्ट, टिका – रामनिवास राय।

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्तशिरोमणि

2. सूर्यसिद्धान्त

3. सिद्धान्ततत्वविवेक

4. ग्रहगति का क्रमिक विकास

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. भू-आकर्षण से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. भास्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित भू-आकर्षण सिद्धान्त का प्रतिपादन कीजिये।
3. न्यूटन का सिद्धान्त क्या है।
4. न्यूटन के गति के नियमों को लिखिये।
5. प्राच्य-पाश्चात्य दृष्टि से गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की समीक्षा कीजिये।
6. केप्लर के नियमों को प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 3 पृथ्वी का गोलत्व

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना

३.२ उद्देश्य

३.३ पृथ्वी के गोलत्व के सन्दर्भ में आर्यभट्ट का मत

३.४ ब्राह्मण ग्रन्थों में पृथ्वी के गोलत्व का प्रतिपादन

३.५ वैदिक मत से पृथ्वी का परिभ्रमण

३.५.१ श्री सी0वी0एन0 राव का भूगोल के सन्दर्भ में मत

३.५.२ भूगोल के सन्दर्भ में तैतिरीय ब्राह्मण का मत

३.६ आचार्य भास्कर के मत में पृथ्वी का गोलत्व

३.७ भूगोल के सन्दर्भ में विभिन्न आचार्यों का मत

३.७.१ ज्योतिष शास्त्र से इतर पृथ्वी के गोलत्व का वर्णन

३.८ सारांश

३.९ पारिभाषिक शब्दावली

३.१० अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

३.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

३.१२ सहायक पाठ्यसामग्री

३.१३ निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय परम्परा में पृथ्वी के लिये भूगोल शब्द प्रयुक्त होता है, जिसका सीधा सा अर्थ ही है कि भूमि गोल है। उसी प्रकार इस पृथ्वी के लिये जगत शब्द प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ भी होता है "चलने वाला"। अर्थात् इस पृथ्वी में गति है। वैसे ही इस दुनिया के लिये संसार शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है, जिससे अर्थ है –"संसरतीति संसार" जिसमें संसरण का गुण है, जो खिसकता रहता है, वही संसार है। उसी प्रकार वेदों में पृथ्वी के लिये गौ शब्द का भी प्रयोग किया है, जिसका अर्थ भी गमन करना होता है। इस प्रकार पृथ्वी के लगभग जितने भी पर्यायवाची शब्द संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध होते है, उन सभी में गति अर्थ का प्रयोग प्राप्त होता है। जिससे यह अनुमान होता है कि निश्चित रूप से प्राचीन ऋषियों को पृथ्वी की गति का ज्ञान था। पृथ्वी स्थिर नहीं है, ऐसा निश्चित ही परिज्ञान रहा होगा। इस पाठ में विविध प्रमाण प्रदान किये गये है जिनसे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल से ही ज्ञात था कि पृथ्वी गोल है।

३.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप –

१. प्राचीन भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा का निदर्शन प्राप्त करेंगे
२. भूगोल के सन्दर्भे में प्राचीन ऋषियों के ज्ञान का परिचय प्राप्त करेंगे
३. पृथ्वी के गोलत्व से संबंधित विविध प्राचीन प्रमाणों का अध्ययन करेंगे
४. भूगोल के सन्दर्भ में विविध आचार्यों के मत-मतान्तरों का विस्तृत परिचय प्राप्त करेंगे
५. प्राचीन काल से ही पृथ्वी के गोलत्व का ज्ञान भारत में था, इस तथ्य का सप्रमाण प्रतिपादन करने में समर्थ हो सकेंगे।

३.३ पृथ्वी के गोलत्व के सन्दर्भ में आर्यभट्ट का मत

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्। अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।[1]

[1] आर्यभटीयम् (गीतिकापाद, श्लोक-६)

इस श्लोक में आर्यभट ने यह स्पष्ट किया है कि नक्षत्र मण्डल स्थिर है तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है।

जिस प्रकार से नाव में बैठकर कोई मनुष्य पूर्व की ओर जाने पर व्यक्ति को अचल वस्तुऐं विपरीत दिशा में जाती हुई दिखती है, उसी प्रकार अचल नक्षत्रमण्डल को लङ्का से पश्चिम की ओर जाते देखते है

शशिराशयष्ठ चक्रं तेंऽशकला योजनानि यवस्त्रिगुणाः।
प्राणेनैति कलां भं ख, युगांशे ग्रहजवो भवांशेऽर्कः।।

इस श्लोक में आचार्य आर्यभट ने प्राणेनैति कलां भं ख से यह स्पष्ट कर दिया है कि पृथ्वी प्राणेन अर्थात् एक प्राण कालान्तर में एक चक्रकला घूमती है।

३.४ ब्राह्मण ग्रन्थों में पृथ्वी के गोलत्व का प्रतिपादन

वैदिक संस्कृति पुस्तक में गोविन्द चन्द्र पाण्डे जी ने तिलक की ओरायन नामक पुस्तक का उदाहरण दिया है कि तिलक ने अपनी ओरायन नाम के प्रसिद्ध ग्रन्थ में यह कहा है कि यह भी कहना युक्ति युक्त प्रतीत होता है कि वैदिक ज्योतिष पृथ्वी को गोल और गतिशील मानता था। पृथ्वी को **गौः** कहना और गार्हपत्य अग्निकुण्ड को वृत्ताकार बनाना इसके सूचक है। कुछ मनीषी सूर्य को स्थिर मानते थे इसका भी संकेत मिलता है । ऐतरेय ब्राह्मण में (३.४४.४) कहा गया है कि सूर्य वस्तुतः उदित या अस्त नहीं होता। यह एक ओर अंधेरा और दूसरी ओर उजाला करता है।[2]

खगोल विद्या शुद्ध रूप से वेदों की देन है और वेदों पर अनुसंधान करते हुए यह विज्ञान भारत में ही विकसित हुआ। प्रसिद्ध जर्मन खगोलविज्ञानी कॉपरनिकस से लगभग १००० वर्ष पूर्व आर्यभट ने पृथ्वी की गोल आकृति और इसके अपनी धुरी पर घूमने की पुष्टि कर दी थी। पृथ्वी के आकार का ज्ञान उपनिषदों और पुराणों में इंगित पद्माकार, अंडाकार से होता है। शतपथ में परिमण्डल रूप भी पृथ्वी की गोलाकार आकृति का द्योतक है। ऋग्वेदानुसार भी पृथ्वी गोल है तथा

[2] वैदिक संस्कृति(गोविन्द चन्द्र पाण्डे , लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ ५२५)

सूर्य के आकर्षण पर ठहरी है। यजुर्वेद के अनुसार पृथ्वी जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमती है।[3]

३.५ वैदिक मत से पृथ्वी का परिभ्रमण –

पश्चिम में 15वीं शताब्दी में गैलिलियो के समय तक धारणा रही कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य उसका चक्कर लगाता है, परन्तु आज से लगभग 1500 वर्ष पूर्व हुए आर्यभट ने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। वेदों में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और उसी सूर्य के आकर्षण के कारण अपने मार्ग से भटक नहीं सकती। 27 सूर्य अर्थात् नक्षत्रों की परिक्रमा पृथ्वी कितने दिनों में करती है, इसका उत्तर ऋग्वेद इस प्रकार से देता है –

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत।

तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलाशः।।[4]

भावार्थ – (चक्रम्) यहां वर्ष ही चक्र है, क्योकिं यह रथ के पहिया के समान क्रमणः अर्थात् पुनः पुनः घूमता रहता है। उस चक्र में **(द्वादश + प्रधयः)** जैसे चक्र में छोटी –छोटी अरे **प्राधि** = कीलें हैं, वैसे ही वर्ष में बारह मास हैं। **(त्रीणि + नभ्यानी)** उसके (पृथ्वी के) परिक्रमण के दौरान कोई भाग सूर्य के नजदीक आने - दूर जाने से तीन ऋतुऐं होती हैं। **(क उ तत् चिकेत)** उस तत्त्व को कौन जानता है? **(तस्मिन् साकं शङ्कवः)** उस वर्ष में कीलों सी **(त्रिशता + षष्टिः)** 300 और 60 दिन **(अर्पिता)** स्थापित है। **(न + चलाचलाशः)** वे 360 दिन दिन रूप कीलें कभी विचलित होने वाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एक वर्ष में 360 दिन होते हैं।[5]

पृथ्वी के परिभ्रमण का नाम क्रान्ति वृत्त है। इसी क्रान्ति वृत्त पर पृथ्वी घूमती है। पृथ्वी से ही चन्द्रमा बद्ध रहता है। अत एव ये दोनों सूर्य का चक्कर लगाते है। पृथ्वी का जो अयन है अर्थात् क्रान्ति वृत्त और विषुवद वृत्त का जो संपात् है वह विषुवद वृत्त के चारों ओर घूमता है। इसकी परिक्रमा 25 हजार 9 सौ 40 दिन में समाप्त होती है। अयन का संबन्ध पृथिवी से है। अयन परिक्रमा लगाता है, इसका अर्थ है पृथिवी की धुरी भी परिक्रमा लगाती है।[6]

[3] वेदों में विज्ञान (फरहान ताजपृष्ठ सं. १८९,१३९) सागर प्रकाशन, २०१५

[4] ऋग्वेद 1-164-48

[5] वेदवाचस्पति पं .मोतीलाल शास्त्री ,पृष्ठ नं 54- 53.

[6] वेदवाचस्पति पं .मोतीलाल शास्त्री ,पृष्ठ नं5.7-58

जिस पृथ्वी पिण्ड पर हम सभी स्थित हैं, वह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाती है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने का जो मार्ग है उसे क्रान्ति वृत्त कहते है। पृथिवी के मध्य का जो सबसे बडा पूर्वापर वृत्त है, उसे नाडीवृत्त, विषुवद्वृत्त, भूमध्यरेखा या आङ्ग्लभाषा में 'इक्वेटर' कहा जाता है। उत्तरीध्रुव से 90 अंश दक्षिण और दक्षिणी ध्रुव से 90 अंश उत्तर की ओर जो कल्पित पूर्वापर वृत्त है, उसी का नाम विषुवदवृत्त है। यदि पृथ्वी सदा इस विषुवदवृत्त पर ही घूमती तो दिन-रात सदा वराबर रहते। 12 घण्टे की रात व 12 घण्टे का दिन होता, परन्तु ऐसा है नहीं। पृथ्वी सूर्य से दक्षिण भाग में नीचे की ओर लगभग 24 अंश तक चली जाती है, इसी तरह सूर्य से उपर उत्तर की ओर लगभग 24 तक चली जाती है। इससे 24 अंश उंचा और 24 अंश नीचा 48 अंश का एक अण्डाकार वृत्त बन जाता है, उसपर पृथ्वी घूमती है, इसी का नाम क्रान्तिवृत्त है। यही कारण है कि दिन रात बराबर नहीं होते हैं। पृथ्वी घूमते घूमते जब सौर विषुव पर आती है तो इस दिन रात-दिन बराबर होते है। ऐसी स्थिति वर्ष में दो बार ही आती है। अतः कोशकार कहते है –

"समरात्रिन्दिवे काले विषुवद् विषुवं च तत्" इति।

सूर्य के विषुवत् से जो दक्षिण भाग है वह दक्षिण गोल कहलाता है, और उत्तरभाग उत्तर गोल कहलाता है। पृथिवी दक्षिण-गोल से जिस दिन उत्तर गोल में प्रविष्ट होती है। उस दिन दिन-रात बराबर होते हैं। एवं जिस दिन उत्तर से दक्षिण गोल में प्रविष्ट होते हैं, उस दिन भी रात दिन बराबर होते हैं। 6 महिने पृथ्वी उत्तर गोल में रहती है, 6 महीने दक्षिण गोल में रहती है। क्रान्तिवृत्त और विषुवत वृत्त के सम्पात की जो गति है उसी को अयन बिन्दु का चलन कहते है। यह सम्पात भी दो स्थानों पर होता है, उन सम्पात बिन्दुओं को राहु-केतु कहा जाता है। ये दोनों सम्पात १. शारद सम्पात और २. वासन्त सम्पात नाम से प्रसिद्ध है। जिस दिन (२१ मार्च को चैत्र महिने में) वासन्त सम्पात होता है और २३ सितम्बर को शारद सम्पात होता है उस दिन दिन-रात बराबर होते है। एवं २२ जून को दिन सवसे बडा होता है। एवं २२ दिसम्बर को दिन सबसे छोटा होता है।

वेद का सिद्धान्त है कि सूर्य बृहती छन्द के बीच में(विषुवत् के बीच में) स्थिर रूप से

प्रतिष्ठित रहता है अत एव **सूर्यो बृहतीमध्यूढस्तपति** कहा जाता है। **बृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्तः** इत्यादि मन्त्र सूर्य के स्थिरत्व का प्रतिपादन करते है। इस सूर्य के चारों ओर चन्द्रमा को साथ लिये हुए पृथ्वी घूमती है, परन्तु पृथ्वी अपने अक्ष पर भी 24 घण्टों में घूम जाती है इसी को स्वाक्षपरिभ्रमण कहते है। जैसे गाडी का पहिया अपने स्थान पर घूमता हुआ आगे चलता है उसी

प्रकार पृथ्वी अपने स्थान पर घूमती हुई क्रान्ति वृत्त के चारों ओर परिक्रमा लगाती है। इसी परिभ्रमण से दिन-रात होते है। इस स्वाक्षपरिभ्रमण का नाम दैनन्दिन गति है। कुम्भकार के चाक पर दृष्टि डालिये। उस चाक का बिन्दु बिन्दु चल रहा है, परन्तु जिसके चारों ओर चाक घूम रहा है, वह कील बिल्कुल स्थिर है। इसी प्रकार पृथ्वी का भी प्रत्येक बिन्दु गतिमान है। पृथ्वी अपनी धुरी पर तो घूमती ही है साथ ही सूर्य के चारों ओर भी परिक्रमा लगाती है, यह परिक्रमा ३६५ दिन में समाप्त होती है।

३.५.१ श्री सी.वी.एन.राव का भूगोल के सन्दर्भ में मत –

श्री सी.वी.एन.राव ने अपनी पुस्तक "The vedic map of the universe" में भूगोल का इस प्रकार से विवेचन किया है – "Bhooloka consists of two sub-worlds – A. Bhoogola (Planet earth) and B. Mahabhoomi (greater earth). Bhoogola or planet earth is at the centre of the universe and so is one of the upper worlds or UOORDHWALOKAS. On the other hand MahaBhoomi (Greater earth) which is situated in the lower half of the universe is usually mentioned as a lower world or ADHOLOKA.[7] BHOOGOLA or Planet Earth is where we are living. We human beings, flora and fauna of great variety are living on this planet earth.

अर्थात् भूलोक दो भेदों में विभक्त हैं – **अ.** भूगोल (पृथ्वी ग्रह) और **ब.** महाभूमि (बृहत्तर पृथ्वी). भूगोल अथवा पृथ्वी ग्रह ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित है जिसे ऊर्ध्वलोकों में से एक लोक माना गया है। वही दूसरी ओर महाभूमि (बृहत्तर पृथ्वी) जो कि ब्रह्माण्ड के अधोभाग में अवस्थित है, जिसे साधारण रूप से अधोलोक कहा जाता है। भूगोल वह है जिस पर हम सभी निवास करते हैं – सभी मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड-पौधे, जीव-जन्तु आदि। आगे राव जी ने भूगोल का विस्तार से वर्णन किया – "Planet earth was not created independently and originally. It is a piece of MAHABHOOMI (greater earth) originally MAHABHOOMI was created. Then after some time, a piece in global shape is known as BHOOGOLA or Planet earth"

[7] The vedic map of the universe(C.V.N.RAO), chapter IX, VII-A

अर्थात् पृथ्वी ग्रह स्वतन्त्र रूप से स्वयं उत्पन्न नहीं हुआ। यह महाभूमि(बृहत्तर पृथ्वी) का ही एक भाग है। मुख्य रूप से आरम्भ में महाभूमि का उद्भव हुआ था, उसके उपरान्त महाभूमि का एक भाग टूटकर गोलाकार रूप में ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थापित हुआ जिसे भूगोल अथवा पृथ्वी ग्रह कहा गया।

३.५.२ भूगोल के सन्दर्भ में तैत्तिरीयब्राह्मण का मत –

इन तथ्यों का आधार उन्होने तैत्तिरीयब्राह्मण की पृथ्वी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में एक कथा को माना। जो कि निम्न प्रकार से है –

"आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् तेन प्रजापतिवश्राम्यत्।

कथमिदं स्यादिति। सोनपश्यत् पुष्करपर्णं तिष्ठत्"।।

सृष्टि के आरम्भ सर्वप्रथम जल था, उस समय प्रजापति (ब्रह्मा) ने सृष्टि की रचना के विषय में चिन्तन किया, तब ब्रह्मा ने जल में पुष्करपर्ण को देखा।

सोन् मन्यत। आस्तिवैवत्। यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति। स वराहोरूपं कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथिवीमथ आर्छत्। तस्या उपहत्योदमज्जत्। तत्पुष्करपर्णेन प्रथयत्। यदप्रथयत्। तत्पृथिव्यै पृथिवीत्वम्।[8]

उक्त वचनों का श्रीविद्यारण्य ने निम्न प्रकार से भाष्य किया है –

"तच्च (तत्पुष्करपर्णं) दृष्ट्वा। मनस्येव मतर्कयत्। यस्मिन्नाधार इदं सनालं पद्मपत्रमधिश्रियतिष्ठति। तद्यस्तु किञ्चिदधस्तादस्ले वेतितर्क इत्वाच स प्रजापतिः। वराहो भूत्वा तदीयं रूपं च सम्यक्कृत्त्वा। तस्य पद्मपत्रनालस्य समीपे जलमध्ये निमग्नोभूत। मग्नश्चासौ। अधस्तात्। भूमिं प्राप्तवान्। तस्याः। भूमेः सकाशात्। कियतीमपि आर्द्रां मृदं स्वदंष्ट्राग्रा पृथक्कृत्य। सलिलस्योपरि उन्मज्जनं कृतवान्। तच्चमृद्रूपं तस्मिन् पुष्करपर्णे प्रसारितवान्। यस्मादियं मृत्तिका प्रथिता तस्मात् पृथिवी नाम सम्पन्नम्।

अर्थ – प्रजापति ब्रह्मा ने चिन्तन किया कि इस पुष्करपर्ण का निश्चित ही कोई आधार होगा। तब उन्होंने एक वराह का रूप धारण किया और उस पुष्करपर्ण के समीप जल में उतर गये। उन्होने उस

[8] तैत्तीरियब्राह्मण ,१ ,१-३ -६

पत्र के आधार के रूप में महाभूमि को प्राप्त किया। तब उस महाभूमि की कुछ गीली मिट्टी उनके बाहरी बडे दांत पर लगी रह गई। उसे जब झटका तो वह मिट्टी छिटककर जल पर और उस पुष्करपर्ण पर प्रसारित हो गई, जो मिट्टी उस पुष्करपर्ण पर प्रसारित हुई उसी का नाम पृथिवी रखा गया। इसी को पृथ्वी ग्रह या भूगोल कहा।

यह पृथ्वी भी पञ्च महाभूतों से निर्मित है – १. अग्नि २. पृथ्वी ३. वायु ४. जल ५. आकाश। इन सभी में भी पृथ्वी तत्त्व का इस भूगोल के निर्माण में अधिक योगदान है, हमें जो कुछ भी इस पृथ्वी पर ठोस रूप में दिखाई दे रहा है वह सभी पृथ्वी तत्त्व ही है। इसी प्रकार जहां वायु का प्राधान्य है उसे वायुलोक, जहां जल का प्राधान्य है उसे वरुणलोक, जहां अग्नि का प्राधान्य है उसे अग्निलोक कहा गया।

३.६ आचार्य भास्कर के मत में पृथ्वी का गोलत्व –

लीलावती अपने पिता से पूछती है कि पिताजी, मुझे तो पृथ्वी चारों ओर सपाट दिखाई देती है, फिर आप यह क्यों कहते हैं कि पृथ्वी गोल है। तब भास्कराचार्य कहते हैं कि पुत्री जो हम देखते वह सदा वैसे ही सत्य नहीं होता, तुम एक वृत्त खींचों, फिर उसकी परिधि के सौवे भाग को देखो, तुम्हे वह एक सीधी रेखा में दिखाई देगा, पर वास्तव में वह वैसा नहीं होती वक्र होती है। इसी प्रकार विशाल पृथ्वी के गोले के छोटे भाग को हम देखते हैं, वह सपाट नजर आता है। वास्तव में पृथ्वी गोल है। **समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्। नरश्च तत् पृष्ठगतस्य कुत्सना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा।।**[9]

सूर्य सिद्धान्त के भाष्य में कपिलेश्वर शास्त्री जी ने शाकल्य मुनि का वचन उद्धृत किया है –

"**वृत्तस्य षण्णवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते**"

इससे ज्ञात होता है कि जिस समय शाकल्य मुनि ने यह वचन कहा तब यह ज्ञात था कि पृथ्वी गोल है परन्तु जिस प्रकार वृत्त का 96वां भाग जिस तरह सीधा दिखाई देता है उसी प्रकार इस गोल पृथ्वी पर होते हुए भी भी हम अपने आस-पास के भूभाग को समतल ही देखते है, क्योंकि हम इस गोल पृथ्वी की सतह का 96वें भाग से भी छोटे भाग को ही देख पाते हैं।

[9] सिद्धान्त शिरोमणि ,गोलाध्यायः

पृथ्वी के सन्दर्भ में श्री भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि में प्रतिपादित किया है कि –

यदि समामुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।

उपरि दूरतरोऽपि परिभ्रमण किमुनरै रमरैरि वनेक्ष्यते।।

अगर हम पृथ्वी को सीधे देखें तो यह समतल वृत्ताकार जैसे एक दक्षिण की तरह दिखाई दे रही है और सूर्य पृथ्वी के ऊपर दिखाई देता है यदि हम पृथ्वी को समतल माने तो सूर्य हमें हमेशा बिना अस्त-उदय के दिखाई देना चाहिये परन्तु हम सूर्य को उदय-अस्त होते हुए देखते है इससे यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी वृत्ताकार अर्थात् गोल है।

यदि हम कहते है कि पृथ्वी समतल है और सूर्य अस्त तब होता है जब प्रतिदिन सूर्य मेरू के पीछे चला जाता है और उसके चारों ओर चक्कर लगाता है मेरू जो पृथ्वी के केन्द्र में स्थित है और सूर्योदय तब होता है जब सूर्य मेरू के पीछे जाता है तो उत्तरायण में मेरू सूर्य को बाधा उपस्थित होना हमें दिखाई देना चाहिये लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है यदि हम कहें कि मेरू एक महान दूरी पर है तब उस स्थिति में जब दक्षिणायन में सूर्य दक्षिण में स्थित होता है और मेरू जो कि उत्तर में स्थित है तो दक्षिण में सूर्योदय एवं सूर्यास्त नहीं होना चाहिये लेकिन सूर्यास्त और सूर्योदय हो रहा है अतः यह बात किसी भी शंका से परे है कि सूर्योदय और सूर्यास्त हो रहा है क्योंकि पृथ्वी गोल है और सूर्य पृथ्वी की ओर बढ रहा है और वह पृथ्वी पर उस क्षेत्र को क्षेत्र को बना रहा है जिससे वह दिन और रात्रि में दिखाई दे रहा है, इस प्रकार यह स्थापित हुआ कि पृथ्वी गोल है

यदि निशाजनकः कनकाचलः किमुतदंदतरगस्सन दृश्यते।

उदगयं नानुमेरूधांशुमान कथमुदेति च दक्षिणभाके।।

भास्कराचार्य और अन्य वैदिक विद्वानों की रचनाओं से संबंधित तथ्यों का उल्लेख करते हुए इस शाखा पर ध्यान देना अति आवश्यक है कि भास्कराचार्य एवं वैदिक विद्वानों के कार्यों (रचनाओं) से तथ्यों का विवरण देने का अर्थ यह नहीं है कि वे खोजकर्त्ता या उक्त तथ्यों के अन्वेषक है। यह जो तथ्य प्रस्तुत किये किए गये यह सृष्टि के पुण्यजीवों द्वारा सृष्टि निर्माण और समय पूर्व से गुरू शिष्य परम्परा द्वारा प्रचारित किए गए और विद्वानों ने तथ्यों और अपने समय के दौरान उन तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया। पृथ्वी का व्यास १६२७ तथा भूगोल का योजन ज्योतिष सिद्धान्त द्वारा १२७९७

किलोमीटर है। जैसे कि पृथ्वी गोल है और हर व्यक्ति हर जगह से महसूस करते और समझते है कि वे पृथ्वी के शीर्ष भाग पर है लेकिन यह तथ्य सही नहीं है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि भचक्र और ब्रह्माण्ड के केन्द्र में भूगोल स्थित है और वैश्विक बिन्दु जो ऊपर की दुनिया की ओर इशारा करते हुए भुवर्लोक की ओर इंगित करता है। अर्थात् भचक्र से ऊपर की ओर जा रही मेरू रेखा पर ज्योतिष चक्र के शीर्ष बिन्दु पर स्थित यह बिन्दु सुमेरू या उत्तरी ध्रुव के नाम से जाना जाता है और वैश्विक बिन्दु जो नीचे की दुनिया की ओर इशारा इंगित कर रहा है अर्थात् महाभूमि अर्थात् भचक्र के केन्द्रीय बिन्दु से ऊपर की ओर बढने वाली मेरू रेखा के बिन्दु को दक्षिणध्रुवों (दक्षिणी ध्रुव) के नाम से जाना जाता है पृथ्वी के बीच में काल्पनिक परिपत्र परिखा है जिसे निरक्षरेखा (भूमध्य रेखा) रूप से जाना जाता है और प्राचीन ऋषियों ने (सुमेरू) उत्तरी ध्रुव से निरक्ष रेखा (भूमध्य रेखा) में देव भाग के रूप में कहा है और निरक्ष रेखा से आधा विश्व के आधे भाग जैसा कि असुर भाग (कुमेरू) है दक्षिण भाग तक। पृथ्वी ग्रह के निवासियों के लिए ज्योतिष चक्र तीन प्रकार का है। देवभाग के लोगों के लिये ज्योतिषचक्र का चक्र घडी की दिशा में होता है और असुर भाग के घडी की दिशा के विपरीत दिशा में होता है। भूमध्य रेखा पर ज्योतिषचक्र के परिक्रमण पश्चिम की ओर स्थित है ज्योतिषचक्र के परिभ्रमण की अलग-अलग धारणा संभव नहीं हैं यदि ग्रह पृथ्वी एक समतल आकार की है तो इससे यह संभव नहीं है केवल पृथ्वी के गोलाकार होने पर ही संभव है अतः पृथ्वी गोल है।

३.७ भूगोल के सन्दर्भ में विभिन्न आचार्यों के मत –

सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ के गोलाध्याय में कहा है –

उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयति सुरासुराः।
अन्येऽपि समसूत्रस्थानमन्यतेऽध परस्परम्।।
मन्यते खे यतो गोलस्तस्य कोर्ध्वं क्ववाप्यधः।
सव्यं भ्रमति देवानाम् अपसव्यं सुरद्विषाम्।।
उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षेपश्चान्मुखं सदा।
मध्ये समतादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्।।

सोम सिद्धान्त में कहा है –

समतादण्डमध्येऽस्मिन् भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।

सर्वाधारोऽपि सधृतो ब्रह्मणा विश्वरूपिणा।।

रोमक सिद्धान्त में कहा है –

कार्यकारण मध्यस्थं भूर्मध्येऽस्य सर्वतः।

वराहमिहिर ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ में कहा है –

पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।

खेयस्कां तात स्थोलोह इवावस्थितो वृत्तः।।

आर्यभटीयम् ग्रन्थ में आर्यभट ने प्रतिपादित किया है –

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्या परिवेष्टितः खमध्यस्थः।

मृञ्जलशिखिवायुमयो भूगोल रसर्वतो वृत्तः।।

दिवागनभरण में कहा है –

ब्रह्माण्डमध्यस्थ नाभोन्तराले पूर्वोक्तसंख्या सहितस्सु वृत्तः।

आधारशक्त्याधृत एव धातुर्गोलस्सदा तिष्ठति भूतधात्याः।।

सिद्धान्तशेखर में प्रतिपादित किया है –

नभस्य यस्कान्त महामणि नामन्तस्थितो लोहगुडो यथास्ति।

आधारशून्योऽपि च दैव सर्वाधारो धरित्र्याः क्रम एष गोलः।।

उपरोक्त सभी ग्रन्थकारों ने कहा कि पृथ्वी गोल है और यह ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित है। परमात्मा की शक्ति के अतिरिक्त उसका कोई आधार नहीं है, जो उसे आकाश में अपने स्थान पर स्थित रखता है।

वेद विद्या निदर्शन ग्रन्थ के रचनाकार भगवदत्त जी ने प्रतिपादित किया कि ऋग्वैदिककाल में ही ऋषियों को पृथ्वी के स्वरूप का ज्ञान था। इस पृथ्वी का आकार कैसा है इसका विवेचन वैदिक ग्रन्थों में इस प्रकार से उपलब्ध होता है –

जैमिनीय ब्राह्मण में वर्णन प्राप्त होता है –

स एष प्रजापतिः अग्निष्टोमः परिमण्डलो भूत्वा अनन्तो भूत्वा शये। तदनुकृतीदम् अपि च अन्या देवताः परिमण्डलाः। परिमण्डल आदित्यः, परिमण्डलः चन्द्रमाः, परिमण्डला द्यौः, परिमण्डलमन्तरिक्षम्, परिमण्डला इयं पृथिवी।

अर्थात् – वह यह प्रजापति अग्निष्टोम परिमण्डल रूप होकर अनन्त (गोल) होकर ठहरा, उसी का अनुकरणरूप अन्य देवता भी परिमण्डल हैं। आदित्य, चन्द्रमा, द्यौ, अन्तरिक्ष और यह पृथिवी

परिमण्डल रूप है। परिमण्डल का अर्थ है जिसके सभी ओर मण्डल अथवा घेरा है। अर्थात् जो गोल घेरे में अथवा गोलाकार रूप से आवृत्त हो। विशेष ध्यान देने योग्य है कि सम्पूर्ण द्युलोक ही परिमण्डल है।[10] गणना की सुविधा हेतु प्राचीन आचार्यों ने सम्पूर्ण भचक्र (अथवा राशिचक्र) को ३६० अंशों या २१६०० कला (१ अंश = ६० कला) में विभाजित किया। परन्तु अंश ३६० ही क्यों स्वीकार किये गये, इसका उत्तर केवल वे ऋषि ही दे सकते है। आज भी सम्पूर्ण विश्व में गणना हेतु वृत्त में ३६० अंश ही स्वीकार किये जाते हैं। भचक्र के केन्द्र में उन्होने पृथ्वी (भूगोल) को माना, और उसी के आधार पर सभी प्रकार की पञ्चाङ्ग गणना की। भचक्र नहीं घूमता है इसका उदाहरण ब्रह्मसिद्धान्त में प्राप्त होता है –

पञ्चाचला महीमेरूधृहि क्षितिजमण्डलम्।

अवटस्तमधोभागं क्षितिजाद्वा प्रकल्पयेत्।।

अर्थात् पृथ्वी, मेरू, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव और कुक्षितिज पर्वत ये पांचों नहीं हिलते हैं। ब्रह्मसिद्धान्त में यह भी प्रतिपादित किया गया कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य ज्योतिषचक्र की चौथी कक्षा में भ्रमण कर रहा है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के चौथे अनुवाक के आठवें प्रकरण के दूसरे खण्ड में प्रतिपादित किया गया है –

भूरिद्वे अचरतो चरतम पद्वतं गर्भमपदीपदीदधाते

इसका आशय विद्यारण्य के भाष्य द्वारा प्रतिपादित किया गया –

द्वेद्यावा पृथिव्यौ गर्भं सर्वप्राणि रूपं दधते, धारयतः कीदृश्यौ द्वे आचरति क्वापि अविचरत्यौ स्थिरौ इत्यर्थः अतविचापदी, पादरहिते, नहिगम ना भावेपादयोऽस्ति कश्चिदुपयोगः।

अर्थात् दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक (वैश्विक पृथ्वी) सभी प्राणियों को सदन कर रहे है ये नहीं चलते है, स्थिर रहते है अतः यह कहा जाता है कि वे पैर या पाद के साथ अपदी है। जब कोई आवश्यकता या अदोलन नहीं होता तो पैर की आवश्यकता ही क्या है।

३.७.१ ज्योतिषशास्त्र से इतर शास्त्रों में पृथ्वी के गोलत्व का वर्णन –

[10] वेदविद्या निदर्शन ,इतिहास प्रकाशन मण्डल ,पृष्ठ १२३-१२४

१. पुराणों में अनेक स्थलों पर "भूगोल" शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। भागवतपुराण में पांच स्थलों पर, नरसिंह पुराण में दो स्थलों पर भूगोल शब्द का उल्लेख है और ब्रह्माण्डपुराण में "महीगोल" शब्द का एक बार उल्लेख किया गया है।

२. दर्शनशास्त्र के चार ग्रन्थों में पृथ्वी के गोलत्व का उल्लेख प्राप्त होता है –

(१) दशम शताब्दी के ग्रन्थ 'मोक्षोपाय' में धरागोल व भूगोल शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।

(२) तत्त्वचिन्तामणि (12वीं शताब्दी)

(३) न्यायसुधा (१४वीं शताब्दी)

(४) सांख्यसूत्रविवरण (टीका ग्रन्थ)

३. गोपालतापन्युपनिषद (१३वीं शताब्दी) में 'भूगोलचक्र' शब्द प्राप्त होता है।

४. गीतगोविन्द (१२वीं शताब्दी) में भी एक स्थल पर पृथ्वी के गोलत्व का वर्णन है।

५. वेदान्तदेशिका (१३-१४वी शताब्दी) पृथ्वी का गोलत्व प्रतिपादित करते हुए "भूगोलनिर्णयः" संज्ञक एक लघु रचना की है।

अभ्यास प्रश्न –

(क) लीलावती ग्रन्थ के रचयिता है –

(i) वराहमिहिर (ii) भास्कराचार्य (iii) आर्यभट (iv) मुनीश्वर

(ख) पृथ्वी का परिभ्रमण सर्वप्रथम प्रतिपादित करने वाले आचार्य है –

(i) वराहमिहिर (ii) भास्कराचार्य (iii) आर्यभट (iv) मुनीश्वर

(ग) पृथ्वी का पर्यायवाची नहीं है –

(i) गौः (ii) भूः (iii) अप् (iv) मही

(घ) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा रचित ग्रन्थ है –

(i) ओरायन (ii) गणक तरंगिणी (iii) भाभ्रम (iv) गोल परिभाषा

(ङ) पञ्च महाभूतों में सम्मिलित नहीं है –

(i) पृथ्वी (ii) काल (iii) अग्नि (iv) वायु

(च) सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ के रचयिता है –

(i) ब्रह्मगुप्त (ii) आर्यभट (iii) भास्कराचार्य (iv) वराहमिहिर

(छ) द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं ..... मन्त्र किस वेद का है –

(i) सामवेद (ii) अथर्ववेद (iii) यजुर्वेद (iv) ऋग्वेद

(ज) वृत्त में कुल अंश होते हैं –

१८०० (ii) ६० (iii) ३६० (iv) १००

(झ) **"वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्या परिवेष्टित: खमध्यस्थ:"** वचन किस ग्रन्थ का है –

(i) आर्यभटीय (ii) बृहत्संहिता (iii) सूर्यसिद्धान्त (iv) लीलावती

(ञ) **"परिमण्डला इयं पृथिवी"** वचन है –

(i) शतपथ ब्राह्मण का (ii) गोपथ ब्राह्मण का (iii) ताण्डय ब्राह्मण का (iv) जैमिनीय ब्राह्मण का

१. लघूत्तरात्मक प्रश्न –

(क) **यदि समामुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणि: क्षिते:।**
उपरि दूरतरोऽपि परिभ्रमण किमुनरै रमरैरि वनेक्ष्यते।।
श्लोक किस आचार्य का है?

(ख) ३६० अंशों में कितनी काला होती हैं? "**वृत्तस्य षण्णवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते** किस मुनि का वचन है?

(ग) **"पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोल:"** वचन किस आचार्य का है?

(घ) पुष्करपर्ण संबंधित कथा किस ब्राह्मण ग्रन्थ में प्राप्त होती है?

(ङ) श्री सी.वी.एन.राव रचित पुस्तक का क्या नाम है?

(च) पञ्चमहाभूत कौनसे है?

(छ) भगवान ने किस रूप में पृथ्वी को महासमुद्र से निकाला?

(ज) सबसे बडा व सबसे छोटा दिन कब होता है?

(झ) वेद विद्या निदर्शन ग्रन्थ के रचनाकार कौन है?

३.७ सारांश –

प्राचीन समय में भारत में ऋषियों ने जीवन के प्रत्येक विषय के सन्दर्भ में चिन्तन किया। सृष्टि का आरम्भ, जीवन का आरम्भ, ब्रह्माण्ड की रचना, प्रलय तक सभी विषयों में गहन चिन्तन किया गया। बिना किसी वैज्ञानिक उपकरणों के भी सभी प्रकार की जानकारी अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त की जो कि आज के आधुनिक यन्त्रों के द्वारा भी संभव नहीं है। इसी सन्दर्भ में पृथ्वी के गोलत्व का ज्ञान होना एक साधारण सा विषय है। आज का विज्ञान जिस प्रकार से उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा है, अन्तिम परिणाम के रूप में वह उन्ही तथ्यों को प्रतिपादित कर रहा है, जो कि प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा प्रतिपादित किये गये थे। इसी सन्दर्भ में पृथ्वी के गोलत्व से संबंधित तथ्यों का सप्रमाण प्रतिपादन इस पाठ में किया गया। विशेष रूप से ज्योतिषशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में पृथ्वी के गोलत्व का प्रतिपादन ५वीं शताब्दी से ही प्राप्त हो जाता है। इससे पूर्व वैदिक मन्त्रों व ब्राह्मण ग्रन्थों में भी पृथ्वी के गोलत्वा के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से उल्लेख प्राप्त होता है। अनन्तर काल में अन्य शास्त्रों में भी पृथ्वी के गोलत्व का स्पष्ट रूप से वर्णन प्राप्त होता है। इस विषय में किसी आचार्य का द्वैमत कभी नहीं रहा है, किसी ग्रन्थ ने कभी यह प्रतिपादन नहीं किया कि पृथ्वी का आकार चपटा है, या समतल है। भारतीय ऋषियों की मेधा ब्रह्माण्ड के किसी भी विषय के सन्दर्भ में कभी संशय युक्त नहीं रही, क्योंकि उन्होने समस्त ज्ञान ध्यान व समाधी की पराकाष्ठा में प्रकृति द्वारा ही प्राप्त किया, जिसकी सत्यता में कभी किसी प्रकार का संशय नहीं हो सकता था।

३.८ पारिभाषिक शब्दावली –

भानि – नक्षत्र

विलोमगं – विपरीत दिशा में जाते हुए

विषुवद्वृत्त – नाडीवृत्त, 0 डिग्री अक्षांश रेखा, भूमध्यरेखा (यः रेखा पृथ्वी को दो भागों में बांटती है – उत्तर गोल और दक्षिण गोल)

क्रान्तिवृत्त – इस वृत्त पर सूर्य का परिभ्रमण होता है, राशियों की स्थिति भी इसी वृत्त पर मनी जाती है

अयनबिन्दु – नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात बिन्दु

निशाजनकः – चन्द्रमा

अंशुमान् – सूर्य

सव्य – सीधी दिशा में, घडी की दिशा में, दक्षिणावर्त्त

अपसव्य – उलट दिशा में, घडी की विपरीत दिशा में, वामावर्त्त

भचक्र – नक्षत्र चक्र अथवा राशि चक्र

३.९ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

(क) (ii)
(ख) (iii)
(ग) (iii)
(घ) (i)
(ङ) (ii)
(च) (iii)
(छ) (iv)
(ज) (iii)
(झ) (i)
(ञ) (iv)

लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर –

(क) भास्करचार्य का
(ख) २१६०० कला
(ग) शाकल्य मुनि
(घ) आचार्य वराहमिहिर
(ङ) तैत्तिरीय ब्राह्मण
(च) "The vedic map of the universe"
(छ) पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश
(ज) वराह रूप में २२ जून को दिन सवसे बडा होता है। एवं २२ दिसम्बर को दिन सबसे छोटा होता है।
(झ) भगवतदत्त जी

३.१० सन्दर्भ ग्रन्थाः –

- सिद्धान्तशिरोमणिः, भास्कराचार्यः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज
- लीलावती, भास्कराचार्यः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज
- आर्यभटीयम्, आर्यभट, चौखम्बा संस्कृत सीरिज
- सूर्यसिद्धान्तः, आर्षः, टीका- कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज

३.११ सहायकपाठ्यसामग्री –

- १. ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, आचार्यलोकमणिदाहाल, चौखम्भा प्रकाशन
- २. भारतीय ज्योतिष, शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान
- ३. वेदविद्या निदर्शन, इतिहास प्रकाशन मण्डल
- ४. The vedic map of the universe(C.V.N.RAO)

३.१२ निबन्धात्मक प्रश्न

१. भास्कराचार्य के मत में पृथ्वी का गोलत्व प्रतिपादित कीजिये।

२. पृथ्वी के गोलत्व के सन्दर्भ में विभिन्न आचार्यों के मत का उल्लेख कीजिये।

३. पृथ्वी के उत्पत्ति के सन्दर्भ में वैदिक मत का प्रतिपादन कीजिये।

४. ब्राह्मण ग्रन्थ में पृथ्वी के गोलत्व के सन्दर्भ में प्रतिपादित मतों का वर्णन कीजिये।

इकाई – 4 परिधि व्यास सम्बन्ध

इकाई की संरचना

४.१ प्रस्तावना

४.२ उद्देश्य

४.३ परिधि-व्यास परिचय

४.४ परिधि व्यास सम्बन्ध

४.५ सारांश

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-608 के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – परिधि-व्यास सम्बन्ध। इसके पूर्व में आपने भू-भ्रमण, गुरुत्वाकर्षण तथा पृथ्वी के गोलत्व से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष गणितीय सम्बन्धों में परिधि और व्यास के सम्बन्ध से परिचित होने जा रहे है।

परिधि और व्यास का सम्बन्ध वृत्त या गोल से है। वृत्त के चारों ओर की सम्पूर्ण क्षेत्र को परिधि तथा वृत्त के दोनों केन्द्रों तक जाने वाली रेखा को व्यास के रूप में जाना जाता है। इन दोनों को सम्बन्ध गणित में महत्वपूर्ण माना जाता है।

अत: आइए इस इकाई में हम सभी व्यास और परिधि के गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

४.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- परिधि की परिभाषा क्या है।
- व्यास किसे कहते है।
- सिद्धान्त ज्योतिष में परिधि-व्यास का सिद्धान्त क्या है।
- प्राचीन-अर्वाचीन मत में परिधि-व्यास का सिद्धान्त क्या है।
- गणितीय दृष्टिकोण से परिधि-व्यास क्या है।
- परिधि-व्यास का महत्व क्या है।

४.३ परिधि –व्यास सम्बन्ध

गणित ज्योतिष एवं गोल का जब हम अध्ययन करते है तब हमें परिधि और व्यास शब्द का उल्लेख मिलता है। क्या है परिधि? व्यास किसे कहते है? परिधि और व्यास का सम्बन्ध क्या है? इन प्रश्नों का जब हम विचार करते हैं तो हमें सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि परिधि और व्यास का सम्बन्ध भू, वृत्त तथा गोल से है। वृत्त का सम्पूर्ण भाग उसका परिधि होता है। जबकि व्यास एक

बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक। परिधि और व्यास के सम्बन्ध से तात्पर्य है – भूपरिधि और भूव्यास। अत: सर्वप्रथम भू का ज्ञान करते है। 'भू' का अर्थ होता है – पृथ्वी एवं तत्सम्बन्धित व्यास को 'भूव्यास' कहा जाता है। पृथ्वी के व्यास एवं मध्यम भूपरिधि के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि –

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्।।

अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८०० के दुगने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है, वह 'पृथ्वी की परिधि' होती है।

यदि पृथ्वी का व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि = $\sqrt{व^2 \times १०}$

व × $\sqrt{१०}$ = व × ३.१६२३, जिससे यह सिद्ध होता है कि परिधि व्यास का ३.१६३१ गुना होती है। आजकल यह सम्बन्ध ३.१४१६ दशमलव के चार स्थान तक शुद्ध समझा जाता है जो ३.१६२३ से बहुत भिन्न है, परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकार को व्यास और परिधि का ठीक-ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में अर्द्धव्यास और परिधि का अनुपात ३४३८:२१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यास का ३.१४१३६ गुना होता है। इसीलिए इस श्लोक में परिधि को व्यास का $\sqrt{१०}$ सुविधा के लिए माना गया है, जैसे सम्प्रति जब स्थूल रीति से काम लेना होता है तब कोई इसको २२/७ और कोई ३.१४ मानते है और जहाँ बहुत सूक्ष्म गणना करने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ दशमलव के पाँच-पाँच सात सात स्थानों तक इसको शुद्ध लेना पड़ता है।

ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों में **परिधि और व्यास सम्बन्ध** का मान निम्नलिखित है -

	व्यास: परिधि अर्थात्	व्यास:परिधि
सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, द्वितीय आर्यभट्ट	१: $\sqrt{१०}$	१:३.१६२३
प्रथम आर्यभट्ट	२००००:६२८३२	१:३.१४१६
द्वितीय आर्यभट्ट, भास्कराचार्य	२२:७	१:३.१४२८
भास्कराचार्य	१२५०:३९२७	१:३.१४१३६
३४३८ कला को त्रिज्या मानने से,		

जो ब्राह्मस्फुट के अतिरिक्त	६८७६:२१६००	१:३.१४१३६
सभी सिद्धान्तों में पाया जाता है।		
आजकल के सूक्ष्म गणित से		१:३.१४१५९२७

पृथ्वी का सम्पूर्ण मान भूपरिधि कहलाता है और वह अक्षांश भेद से अलग-अलग होता है। परन्तु सामान्यतया सभी विद्वान लंकादेश के भूमध्य में स्थित होने के कारण उसी देश की कुवृत्तीयपरिणाह को मध्यम भूपरिधि के रूप में स्वीकार करते हैं। यद्यपि गोल में भूपृष्ठ स्थान कहीं भी हो सकता है, - यथा -

भूमौ तिष्ठति यो यत्र पृष्ठस्थानं तदुच्यते।
स्वदेशोऽपि स एवाऽस्य कथ्यते गणितागमे।।

किन्तु व्यवहार में किसी एक प्रदेश को कल्पित मानकर ही भूपृष्ठ का स्थान निर्धारण करने, और गणितादि प्रतिपादित करने की बात दैवज्ञों ने की है। वस्तुत: भूमध्य में लंका तथा उससे 90-90^0 अंश पर यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरू, वडवानल आदि भूपृष्ठस्थ प्रमुख छ: स्थल हैं। इन सभी स्थलों पर लंका को ही भूमध्य में कल्पित मानकर स्थान निर्धारण कर्त्तव्य किया गया है। यथा –

लंका कुमध्ये यमकोटिरस्या: प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्तत: सिद्धपुरं सुमेरू: सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च।।
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसंघा और्वे च सर्वे नरका: सदैत्या:।।

आप इस स्थिति को और सरल तरह से समझिये – पृथ्वी के मध्य में लंका, इसके ९०° पूर्व में यमकोटि और ९०° पश्चिम में रोमक पतन नामक स्थान है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९०° उत्तर में सुमेरू उत्तर ध्रुव है तथा ९०° दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सभी स्थान भूमध्यस्थ लंका के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छ: गोल वाले कहे जाते है। मेरू पर देवता सिद्ध पुरूषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर नरक तथा दैत्य गण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरो को अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं) । पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे

किसी जलाशय के किनारे खड़े होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अध: भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट्ट ने दो प्रकार से व्यास और परिधि का सम्बन्ध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपोगी। आगे व्यास और परिधि के सम्बन्ध को ॥ (पाई) चिह्न से सूचित किया जाता है। आजकल प्रथा है कि यदि व्यास १ है तो परिधि ॥ है, जब कि ॥ का मान व्यवहार के अनुसार २२/७, ३.१४, ३.१४२,३.१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

उपर्युक्त श्लोक में 'योजन' का बड़ा महत्व है। आजकल लोग योजन को सामान्यतया चार कोस के बराबर मानते हैं, परन्तु कोस का मान स्वयं स्थिर नहीं है। किसी-किसी प्रान्त में कोस बहुत छोटा होता है और किसी प्रान्त में बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजन का भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में भूपरिधि या भूव्यास के मान भिन्न- भिन्न अंकों में दिये हुए हैं। नीचे दिए गए अवतरणों से प्रकट होता है कि सिद्धान्तों में भूव्यास के मान क्या-क्या दिये हुए है –

पंचसिद्धान्तिका में भूव्यास मान – १०१८ पूर्णांक ६/१० योजन
आर्यभट्ट और लल्ल के मत भूव्यास मान – १०५० योजन
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त - १६०० योजन
सिद्धान्तशिरोमणि – १५८१ पूर्णांक १/२४ योजन
द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त) – २१०९ योजन
आधुनिक यूरोपीय मत से विषुवद्वृत्तीय – ७९२७ मील
ध्रुवीय - ७९०० मील

इन अंकों से स्पष्ट है कि वराहमिहिर, आर्यभट्ट तथा लल्ल के योजन प्राय: समान हैं और सूर्यसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि के भी योजन प्राय: समान हैं; परन्तु पहले के तीन आचार्यों का योजन इन दोनों के योजन का प्राय: डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकार के योजनों की तुलना वर्तमान मील से की जायेगी। हमारे सिद्धान्तों में पृथ्वी को बिल्कुल गोल माना गया है जिससे यह भेद नहीं रखा गया कि विषुवद्वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधि से भिन्न है। इसलिए तुलना के लिए ध्रुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्यों ने इसी की नाप से भूपरिधि का परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

आर्यभट्टीय मत से	सिद्धान्तशिरोमणि के मत से
१०५० योजन = ७९०० मील	१५८१ योजन = ७९०० मील
इसलिए १ योजन = ७९००/ १०५० मील	इसलिए १ योजन = ७९००/१५८१ मील
= ७.५२ मील	= ५ मील

यदि १ योजन में ४ कोस हो तो

१ कोस = ७.५२/ ४ मील = १.८८ मील इसलिए १ कोस = १/ ४ योजन=१ पूर्णांक१/४ मील आजकल १ कोस २ मील के समान समझा जाता है इसलिए आजकल का योजन आर्यभट्ट के योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्तशिरोमणि वाला कोस आजकल के (गो-कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी-किसी प्रान्त में अब तक प्रचलित है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. भूपरिधि किसे कहते है। लिखिये।
2. सूर्यसिद्धान्तीय स्फुटपरिधि का वर्णन कीजिये।
3. विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार योजनात्मक मान को स्पष्ट कीजिये।
4. भूव्यास से आप क्या समझते है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि भूपरिधि नापी कैसे गयी? सूर्यसिद्धान्त में इसके लिए कुछ उल्लिखित नहीं है, किन्तु भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि में कहते हैं कि उत्तर दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानों की दूरी योजनों में नाप कर उन दो स्थानों के अक्षांशों का भी अन्तर निकालना चाहिए। पुन: त्रैराशिक द्वारा यह जानना चाहिये कि जब इतने अक्षांशों में अन्तर होने से दो स्थानों की दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी? इसकी उपपत्ति नीचे दिए गये क्षेत्र से समझ सकते है -

नीचे दिए गए क्षेत्र में एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अन्तर स सा नापना चाहिये। फिर दोनों के अक्षांशान्तर स भ सा कोण को जानना चाहिये।

उ = उत्तरी ध्रुव या सुमेरू। स, सा एक ही उत्तर दक्षिण रेखा के दो स्थान।

स का अक्षांश = < व भ स।

सा का अक्षांश =< व भ सा।

दोनों के अक्षांशों का अन्तर = < स भ सा।

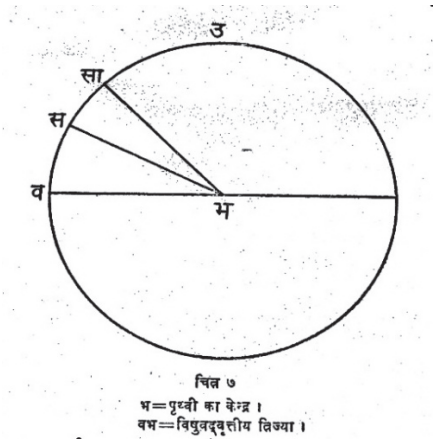

चित्र ७
भ=पृथ्वी का केन्द्र।
वभ=विषुवद्वृत्तीय त्रिज्या।

फिर यह अनुपात करना चाहिए –

< स भ सा: ३६०° : : स सा : भूपरिधि

इसलिए भूपरिधि = $\frac{३६०° \times \text{स सा}}{< \text{स भ सा}}$

भूपरिधि इसी रीति से आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्मयंत्रों के कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है।

4.4 स्पष्ट भूपरिधि

स्पष्ट भूपरिधि के लिए सूर्यसिद्धान्तकार कहते है –

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तस्फुटो भूपरिधिः स्वकः।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।।
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्।
रेखाप्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत् स्वदेशजस्।।

अर्थात् भूपरिधि को (स्वस्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो फल कला में आयेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पश्चिम में हो तो जोड़ना चाहिये।

ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं।

बीजगणित के अनुसार इन श्लोकों को इस प्रकार प्रकट कर सकते है –

$$\text{स्फुट परिधि} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ (१)$$

$$\left.\text{देशान्तर फल}\right\} = \frac{\text{देशान्तर योजन ग्रह की दैनिक गति कला में}}{\text{स्फुट परिधि}} \quad \ldots\ldots\ldots(२)$$

अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह

= लंका की अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह ± देशान्तर फल ..... (३)

यदि स्थान लंका से पूर्व हो तो ऋणात्मक चिह्न और पश्चिम हो तो धनात्मक चिह्न ग्रहण करना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझने से पूर्व श्लोक में कहे गये लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि को भी जान लेना चाहिये कि ये क्या है?

ज्या – यदि किसी समकोण त्रिभुज के किसी भुज की लम्बाई को उसके कर्ण की लम्बाई से भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुज के सामने के कोण की ज्या कहलाती है। नीचे चित्र संख्या ८ में स भा भ एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोण की ज्या = स भा / स भ और भ स भा कोण की ज्या भ भा / सभ। समकोण त्रिभुज के कर्ण की लम्बाई किसी भुज की लम्बाई से अधिक होती है; इसलिए किसी भुज के सामने के कोण की ज्या एक से कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्न में लिखी जाती है। प्राचीन काल में जब कि दशमलव भिन्न का प्रचार नहीं था कोण की ज्या पूर्णांकों में लिखी जाती थी।

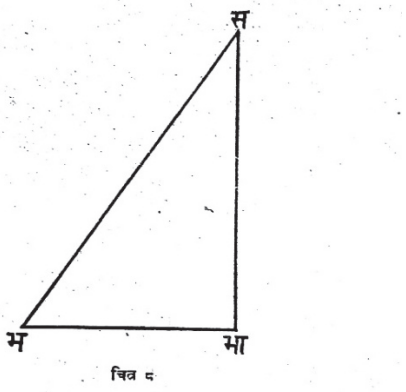

चित्र ८

किसी कोण की ज्या जानने के लिए हमारे सिद्धान्तों में ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या (अर्द्धव्यास) ३४३८ इकाईयॉं और परिधि २१६०० इकाईयाँ होती हैं, जिससे एक-एक इकाई एक-एक कला के समान होती है, क्योंकि परिधि एक चक्र के समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६० × ६० = २१६०० कलाएँ होती है। फिर केन्द्र से परिधि तक दो त्रिज्यायें ऐसी खींचते हैं जिनके बीच का कोण उस कोण के समान होता है जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधि के मिलान बिन्दु से दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते हैं। इस लम्ब की लम्बाई जितनी इकाइयाँ (कलाएं) होती हैं उसी को उस कोण की ज्या कहते हैं। नीचे दिए गए क्षेत्र में अ केन्द्र है; अ आ, अ उ तथा अ ऊ तीन त्रिज्यायें हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं। उ या ऊ से उ इ या ऊ ई लम्ब अ आ पर डाले गये हैं। त्रिज्या की नाप ३४३८ इकाईयों में मानकर उ इ या ऊ ई को जो नाप इन्हीं इकाईयों में होगी वह उ अ इ कोण ऊ अ ई कोण की ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आजकल की प्रथा से परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझने का प्रयास करना चाहिए।

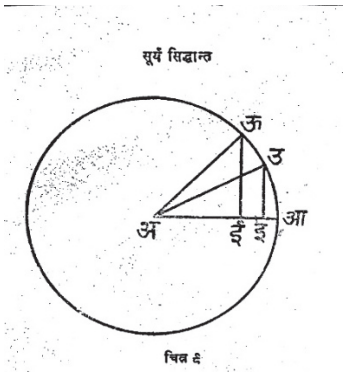

चित्र ६

त्रिज्या का मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओं में विभाजित की जाती है तब त्रिज्या का मान ३४३७पूर्णांक३/ ४ कला आजकल की सूक्ष्म गणना से आता है, जिसका निकटतम पूर्णांक ३४३८ है। आजकल के एक रेडियन में जितनी कलाएँ होती हैं उतनी ही पूर्ण कलाओं के समान त्रिज्या का परिमाण माना गया है।

स्फुट परिधि - भूतल का वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से समान अन्तर पर दोनों के बीचों बीच होता हुआ भू पृष्ठ को दो समान भागों में बॉंटता है, वह विषुवत् रेखा कहलाता है; विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को उत्तर गोल और दक्षिण वाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस रेखा से आकाशीय ध्रुव क्षितिज पर दिखायी देते हैं। यहाँ पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है। इसलिए विषुवत् रेखा को निरक्षवृत्त भी कहते हैं । नीचे दिए गए क्षेत्र १० में व वा वि विषुवत् रेखा

है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्त के समानान्तर स सा सि वृत्त भूतल पर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की 'स्फुट परिधि' कहते हैं।

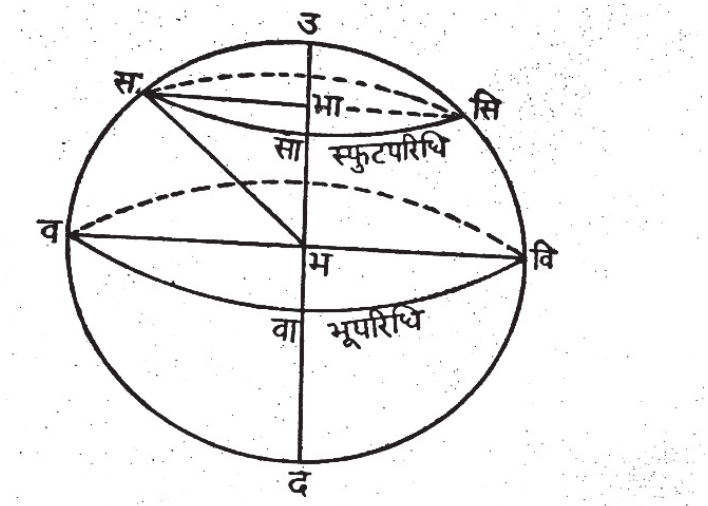

चित्र १०

भ=पृथ्वी का केन्द्र।
उ=पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव (सुमेरु)।
द=पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु)।
व=विषुवत् रेखा का वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है।
स=अभीष्ट स्थान; उसवद स स्थान की उत्तर-दक्षिण रेखा।
∠व भ स=स का अक्षांश।
∠स भ उ=स का लम्बांश।
उ द=पृथ्वी का अक्ष।
स भ=स से पृथ्वी के अक्ष की दूरी

= स स्थान की लम्बज्या, सिद्धान्तीय पद्धति से

विषुवत् रेखा से जैसे – जैसे उत्तर या दक्षिण जाइयेगा वैसे-वैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहाँ तक कि ध्रुवों पर स्फुट परिधि शून्य हो जाती है। इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवों पर अक्षांश ९०° और लम्बांश शून्य हो जाता है। क्षेत्र से भी स्पष्ट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की त्रिज्या 'स भा' है जो स की लम्बज्या भी कहलाती है, क्योंकि स का लम्बांश < स भ उ है जिसके सामने की भुज स भा है।

रेखागणित से यह सिद्ध है कि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासों में होता है, इसलिए

व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि

इसलिए स सा सि = व वा वि × स भा / व भ = भूपरिधि × लम्बज्या/ त्रिज्या, जब त्रिज्या ३४३८ हो ओर लम्बजया का मान सिद्धान्तीय पद्धति के अनुसार कलाओं में हो तो यदि आजकल की प्रथा

के अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि = भूपरिधि × लम्बज्या जबकि लम्बांश की ज्या दशमलव में दी हुई हो क्योंकि इस रीति से लम्बज्या = स भा/ सभ =

सभा / वभ ।

आचार्य भास्कराचार्य स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में भूपरिधि के बारे में बतलाते हुए कहते है कि –

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधि: सप्तांगनन्दाब्धय ४९६७
स्तद्व्यास: कुभुजंगसायकभुवो १५८१ ऽथ प्रोच्यते योजनम्।।
याम्योदक्पुरयो: पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश हृत्।
तद्धक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्।।

अर्थात् आचार्य ने भूपरिधि ४९६७ योजन तथा उसका व्यास १५८१ योजन बताया है। याम्योदकपुर (रेखापुर) और स्वपुर (स्वस्थान) के अक्षांश के अन्तर को परिधि से गुणा करके ३६० अंश से विभक्त करने पर दोनों स्थानों के अन्तर योजन होते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. लंका कहाँ स्थित है?

   क. भूमध्य में ख. रेखादेश में ग. भूपृष्ठ पर घ. निरक्ष देश में

2. लंका के ९०° पूर्व में कौन सा पुर स्थित है?

   क. रोमकपत्तन ख. सिद्धपुर ग. यमकोटि घ. सुमेरू

3. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का व्यास कितना योजन है?

   क. १२०० योजन ख. १४०० योजन ग. १६०० योजन घ.१०००

4. आधुनिक मत में π का मान कितना है?

   क. २२/७ ख. २२/६ ग. २२/५ घ. २२/८

5. $\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} = ?$

   क. भूपरिधि ख. मध्यम भूपरिधि ग. स्पष्टभूपिरिधि घ. कोई नहीं

6. विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को क्या कहते है ?

क. दक्षिण गोल ख. उत्तर गोल ग. पश्चिम गोल घ. पूर्व गोल

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि 'भू' का अर्थ होता है – पृथ्वी एवं तत्सम्बन्धित व्यास को 'भूव्यास' कहा जाता है। पृथ्वी के व्यास एवं मध्यम भूपरिधि के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्।। अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८०० के दुगने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है, वह 'पृथ्वी की परिधि' होती है। भूपरिधि को (स्वस्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो फल कला में आयेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पश्चिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं।

४.६ बोध प्रश्न का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. ग
2. क
3. ग
4. क
5. ग
6. ख

४.७ सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ0 रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद।
2. सिद्धान्तशिरोमणि, टिकाकार - सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

5. सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा – प्रोफेसर विनयकुमारपाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

४.८ पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **भूव्यास**

भू का अर्थ पृथ्वी होता है। तथा उसके केन्द्र से दोनों प्रान्त तक की ओर जाने वाली (दक्षिणोत्तर) रेखा व्यास कहलाती है। आधुनिक मतानुसार पृथ्वी का व्यास को हम २२/७ के रूप में जानते हैं। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है।

- **भूपरिधि**

पृथ्वी के चारों और का सम्पूर्ण मान को हम भूपरिधि के नाम से जानते हैं। भास्कराचार्य के अनुसार भूपरिधि का मान ४९६७ होता है।

- **त्रिज्या**

व्यास का आधा त्रिज्या होता है।

४.९ निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूव्यास से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. भूपरिधि का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. स्पष्ट भूपरिधि का साधन कीजिये।
4. परिधि और व्यास का सम्बन्ध स्थापित कीजिये।
4. व्यास और परिधि में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

इकाई – ५ बौधायन परिमेय

इकाई की संरचरना

५.१ प्रस्तावना
५.२ उद्देश्य
५.३ बौधायन परिमेय परिचय
५.४ बौधायन परिमेय या पाइथागोरस प्रमेय सूत्र
५.५ सारांश
५.६ पारिभाषिक शब्दावली
५.७ बोध प्रश्नों के उत्तर
५.८ सहायक पाठ्यसामग्री
५.९ निबन्धात्मक प्रश्न

५.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-608 के प्रथम खण्ड की पॉचवीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – बौधायन परिमेय। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने भूपरिधि-व्यास सम्बन्ध, पृथ्वी का गोलत्व आदि से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में बौधायन परिमेय का अध्ययन करने जा रहे है।

प्राचीन गणित के साथ-साथ आधुनिक गणित में बौधायन परिमेय अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। सम्प्रति यह पाइथागोरस प्रमेय के नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध है। बौधायन एक प्राचीन गणितज्ञ का नाम है, जिनका प्रमेय या सूत्र बौधायन परिमेय या पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जाना जाता है।

५.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- बता सकेंगे कि बौधायन परिमेय क्या है।
- आधुनिक गणित में बौधायन परिमेय का स्वरूप क्या है।
- बौधायन परिमेय के सैद्धान्तिक पक्ष को समझा सकेंगे।
- ज्योतिष में इसका उपयोग को बता सकेंगे।
- बौधायन परिमेय के उपयोगिता को समझ लेंगे।

५.३ बौधायन परिमेय का परिचय

बौधायन भारत के प्राचीन गणितज्ञ और शुल्ब सूत्र तथा श्रौतसूत्र के रचयिता थे। ज्यामिति के विषय में प्रमाणिक मानते हुए सारे विश्व में यूक्लिड की ही ज्यामिति पढ़ाई जाती है। मगर यह स्मरण रखना चाहिए कि महान यूनानी ज्यामितिशास्त्री यूक्लिड से पूर्व ही भारत में कई रेखागणितज्ञ ज्यामिति के महत्वपूर्ण नियमों की खोज कर चुके थे, उन रेखागणितज्ञों में बौधायन का नाम सर्वोपरि है। उस समय भारत में रेखागणित या ज्यामिति को **शुल्व शास्त्र** भी कहा जाता था।

भारतीय गणित-शास्त्र की मौलिकता

गणित के अनेक सिद्धान्तों के आदान प्रदान के विषय में स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में आग्रहपूर्ण अभिमत देखने में आते हैं। इसी सिद्धान्त की प्राचीनता को तथा किसी सूत्र की विशिष्टता को कम करके देखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस स्थिति में यह स्पष्ट विवेचन अतीव आवश्यक है कि अमुक सिद्धान्त अन्य देशों में प्राप्त सिद्धान्तों से कितना प्राचीन है अथवा यह कि अन्य देशों द्वारा अविष्कृत सूत्रों पर भारत ने कितनी मौलिकता या विशिष्टता प्रदान की है। इसे कुछ उदाहरणों से

प्रकट करते हैं।

बौधायन के सूत्र ग्रन्थ -

बौधायन के सूत्र वैदिक संस्कृत में हैं तथा धर्म, दैनिक कर्मकाण्ड, गणित आदि से सम्बन्धित हैं। वे कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित हैं। सूत्र ग्रन्थों में सम्भवतः ये प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनकी रचना सम्भवतः ८वीं-७वीं शताब्दी ईसापूर्व हुई थी।

बौधायन सूत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित ६ ग्रन्थ आते हैं-

1. बौधायन श्रौतसूत्र - यह सम्भवतः १९ प्रश्नों के रूप में है।
2. बौधायन कर्मान्तसूत्र - २१ अध्यायों में
3. बौधायन द्वैधसूत्र - ४ प्रश्न
4. बौधायन गृह्यसूत्र - ४ प्रश्न
5. बौधायन धर्मसूत्र - ४ प्रश्नों में
6. बौधायन शुल्बसूत्र - ३ अध्यायों में

सबसे बड़ी बात यह है कि बौधायन के शुल्बसूत्रों में आरम्भिक गणित और ज्यामिति के बहुत से परिणाम और प्रमेय हैं, जिनमें २ का वर्गमूल का सन्निकट मान, तथा पाइथागोरस प्रमेय का एक कथन शामिल है।

५.४ बौधायन प्रमेय या पाइथागोरस प्रमेय

समकोण त्रिभुज से सम्बन्धित पाइथागोरस प्रमेय सबसे पहले महर्षि बोधायन की देन है। पायथागोरस का जन्म तो ईसा के जन्म के 8 वी शताब्दी पहले हुआ था जबकि हमारे यहाँ इसे ईसा के जन्म के 15 वीं शताब्दी पहले से ही ये पढ़ायी जाती थी। बौधायन का यह निम्नलिखित सूत्र है :

''दीर्घचतुरश्रस्याक्षणया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यग् मानी च यत् पृथग् भूते कुरूतस्तदुभयं करोति।''

अर्थात् विकर्ण पर कोई रस्सी तानी जाय तो उस पर बने वर्ग का क्षेत्रफल ऊर्ध्व भुजा पर बने वर्ग तथा क्षैतिज भुजा पर बने वर्ग के योग के बराबर होता है।

यह कथन 'पाइथागोरस प्रमेय' का सबसे प्राचीन लिखित कथन है।

2 का वर्गमूल

बौधायन श्लोक संख्या i.61-2 (जो आपस्तम्ब i.6 में विस्तारित किया गया है) किसी वर्ग की भुजाओं की लम्बाई दिए होने पर विकर्ण की लम्बाई निकालने की विधि बताता है। दूसरे शब्दों में

यह 2 का वर्गमूल निकालने की विधि बताता है।

समस्य द्विकर्णि प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत।

तच् चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेषः।।

किसी वर्ग का विकर्ण का मान प्राप्त करने के लिए भुजा में एक-तिहाई जोड़कर, फिर इसका एक-चौथाई जोड़कर, फिर इसका चौतीसवाँ भाग घटाकर जो मिलता है वही लगभग विकर्ण का मान है। अर्थात्

यह मान दशमलव के पाँच स्थानों तक शुद्ध है।

वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल के वृत्त का निर्माण

चतुरस्रं मण्डलं चिकीर्षन्न् अक्षयार्धं मध्यात्प्राचीमभ्यापातयेत्।

यदतिशिष्यते तस्य सह तृतीयेन मण्डलं परिलिखेत्। । (I-58)

Draw half its diagonal about the centre towards the East-West line; then describe a circle together with a third part of that which lies outside the square.

अर्थात् यदि वर्ग की भुजा 2a हो तो वृत्त की त्रिज्या $r = [a+1/3(\sqrt{2}a - a)] = [1+1/3(\sqrt{2} - 1)]\ a$

वृत्त के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल के वर्ग का निर्माण

मण्डलं चतुरस्रं चिकीर्षन्विष्कम्भमष्टौ भागान्कृत्वा भागमेकोनत्रिंशधा

विभाज्याष्टाविंशतिभागानुद्धरेत् भागस्य च षष्ठमष्टमभागोनम् ॥ (I-59))

If you wish to turn a circle into a square, divide the diameter into eight parts and one of these parts into twenty-nine parts: of these twenty-nine parts remove twenty-eight and moreover the sixth part (of the one part left) less the eighth part (of the sixth part).

बौधायन के अन्य प्रमेय

बौधायन द्वारा प्रतिपादित कुछ प्रमुख प्रमेय ये हैं-

- किसी आयत के विकर्ण एक दूसरे को समद्विभाजित करते हैं।

- समचतुर्भुज (रोम्बस) के विकर्ण एक-दूसरे को समकोण पर समद्विभाजित करते हैं
- किसी वर्ग की भुजाओं के मध्य बिन्दुओं को मिलाने से बने वर्ग का क्षेत्रफल मूल वर्ग के क्षेत्रफल का आधा होता है।
- किसी आयत की भुजाओं के मध्य बिन्दुओं को मिलाने से समचतुर्भुज बनता है जिसका क्षेत्रफल मूल आयत के क्षेत्रफल का आधा होता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि बौधायन ने आयत, वर्ग, समकोण त्रिभुज समचतुर्भुज के गुणों तथा क्षेत्रफलों का विधिवत अध्ययन किया था। यज शायद उस समय यज्ञ के लिए बनायी जाने वाली 'यज्ञ भूमिका' के महत्व के कारण था।

नाम में द्विरूपता

"बौधायन" तथा "बौधायनीय" शब्दों के लिए "बोधायन" या "बोधायनीय" का प्रयोग दक्षिण भारत में बहुधा किया जाता है। परन्तु संभवतः यह गलत है क्योंकि -अयन शब्द के प्रयोग में पहले वर्ण का स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे- "द्वैपायन", जो "द्वीप" व "अयन" पर विभिन्न व्याकरणीय नियम लगाकर बना है।

शुल्व प्रमेय या पाइथागोरस प्रमेय

समकोण त्रिभुज की भुजाओं की लम्बाई के मध्य निश्चित सम्बन्ध प्रकट करने वाले सूत्र को 572-501 ई.पू. के गणित के नाम पर पाइथागोरस प्रमेय (Pythagoras theorem) के नाम से जाना जाता है। पर इससे बहुत पहले ई.पू. 7-8वीं शताब्दी में बौधायन आपस्तम्ब शुल्क सूत्रकारों ने किसी आयत पर खींचे गए विकर्ण पर बने वर्ग तथा उस आयत की आसमान भुजाओं पर बने वर्ग के बीच निश्चित सम्बन्ध के माध्यम से इस सूत्र को प्रकट किया था। अतः स्वदेश के अनेक विद्वान् तथा डॉ. थीबो जैसे विदेशी विद्वान् भी यह अभिमत रखते हैं कि इसे शुल्क-प्रमेय कहना अधिक समुचित है।

शुल्क सूत्रकारों ने त्रिक (Triplets) प्राप्त करने का सूत्र नहीं दिया है। पर ऐसी विशेषताओं का उल्लेख अवश्य किया है, जो किसी सूत्र से प्राप्त त्रिक में देखी जाती है। उनका मानना है कि किसी निश्चित नियम के अनुसार निश्चित प्रमाण वाली a, b भुजाओं से बनने वाले दो वर्गों का योग $(b + 2)^2$ के समतुल्य होता है तथा इस निश्चित प्रमाण वाली भुजाओं से बनने वाले त्रिभुज का कर्ण $b + 2$ होता है। यह विशेषता तभी सम्भव है, जब हम a, b भुजाओं को निम्नानुसार

समकक्ष मानकर संक्रियाएँ करें-

n = कोई यथेष्ट संख्या

$(2n)^2 = a^2$ तथा $(n^2 - 1)^2 = b^2$ होने पर –

$$(2n)^2 + (n^2 - 1)^2 = (n^2 + 1)^2$$

अथवा शुल्क सूत्रानुसार → $a^2 + b^2 = (b + 2)^2$

साथ ही कर्ण के सूत्रानुसार-

$2n$ लम्ब, n^2-1 भुज होने पर, n^2+1 कर्ण,

या शुल्क सूत्रानुसार a अर्थात् $(2n)$ लम्ब,

b अर्थात् (n^2-1) भुज होने पर $b + 2$ कर्ण।

इस प्रकार शुल्व सूत्र के इस विवरण से उक्त सूत्र का संकेत मिलता है।

भारतीय गणित में संख्याओं के गुणनखण्डन (m,n) के आधार पर त्रिक का सूत्र विकसित नहीं है। आगे चलकर महावीराचार्य ने अपनी मौलिकता बनाए रखते हुए जो सूत्र विकसित किया वह उन बीज संख्याओं (a, b) के आधार पर है, जिनका जोड़, घटाव क्रमशः m, n बनता है। इसे तुलनात्मक रीति से प्रकट करते हैं-

पाइथागोरस के अनुसार-

क्योंकि → कोटि² = (कर्ण + भुज) (कर्ण – भुज) = $m^2 \times n^2$,

$$\text{कर्ण} + \text{भुज} = m^2, \quad \text{कर्ण} - \text{भुज} = n^2$$

अतः → कोटि = $m \times n$, कर्ण = $\frac{m^2+n^2}{2}$, भुज = $\frac{m^2-n^2}{2}$

महावीर के अनुसार → $m = a + b$, $n = a - b$ मानते हुए–

क्योंकि → कोटि = $(a + b)(a - b)$, कर्ण + भुज = $(a + b)^2$,

कर्ण – भुज = $(a - b)^2$

अतः → कोटि = $a^2 - b^2$, कर्ण = $a^2 + b^2$, भुज = $2ab$

इस प्रकार महावीर ने इस सम्पूर्ण विवरण को अपनी अलग विशिष्टता से वर्णित किया है। इनके पर्यवसित सूत्र की एक विशेषता यह है कि यह सम या विषम किसी भी संख्या को a, b मानकर कार्यशील होता है। जबकि पाइथागोरीय सूत्र में m, n के रूढ़ होने की शर्त है। इस प्रकार महावीर का सूत्र अधिक व्यापक है।

त्रिभुज के क्षेत्रफल का सूत्र-इसे 100 ई.पू. के गणितज्ञ हीरोन के नाम पर Heron's formula के रूप में जाना जाता है। ब्रह्मगुप्त ने 628 ई. में विरचित ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त में इसका वर्णन किया है। यह माना जाता है कि ब्रह्मगुप्त ने मूलतः हीरोन से सूत्र प्राप्त करके इसका विस्तार किया था।

पर यहाँ भी यह ध्यान देने योग्य है कि ब्रह्मगुप्त ने हीरोन की प्रक्रिया के विपरीत पहले चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिये इस सूत्र को विकसित किया। पश्चात् त्रिभुज में एक भुजा को शून्य मानकर त्रिभुज के लिये इसे लागू किया। अतः ब्रह्मगुप्त के अनुसार त्रिभुज के क्षेत्रफल के सूत्र का विकासक्रम–

$$\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-o)} \Rightarrow \sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)}$$

इस विवरण से ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रस्तुत सूत्र की मौलिकता सिद्ध होती है। पर D.E. Smith जैसे इतिहासकार इसे इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि ब्रह्मगुप्त, महावीर आदि किसी ने भी आर्किमिडीज़ या हीरोन आदि के कार्यों से लाभ प्राप्त नहीं किया था। पर अन्य प्रसंग में भारतीय विद्वानों द्वारा अधिक सही सूत्र प्राप्त करने पर वे इनकी मौलिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। आर्यभट द्वारा आर्किमिडीज़, से भी सही तथा सुनिश्चित को π मान प्राप्त करने की स्थिति में वे कहते हैं कि यह बहुत सन्देहास्पद है कि आर्यभट कहाँ तक इसे स्वयं प्रयुक्त कर पाए थे[2]।

प्रस्तुत प्रसंग में स्मिथ जैसे विद्वानों कि आपत्ति इस बात को लेकर है कि ब्रह्मगुप्त, महावीर इत्यादि चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिए $\sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$

सूत्र को विकसित करते समय इतना भी ध्यान नहीं रख पाए कि यह सूत्र केवल चक्र चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिये लागू होता है[3]।

बड़े खेद का विषय है कि स्मिथ जैसे अनेक विद्वान् ब्रह्मगुप्त आदि पर इस प्रकार का दोष मढ़ते रहे हैं। जबकि थोड़ा गहराई में अनुशीलन से इसका आसानी से समाधान हो जाता है। यह सही है कि ब्रह्मगुप्त ने चतुर्भुज के क्षेत्रफल के सूत्र में चक्रीय चतुर्भुज की सीमा नहीं बताई है। पर इसके केवल 6 श्लोक के पश्चात् चतुर्भुज का विकर्ण प्राप्त करने के लिये एक बढ़िया सूत्र दिया है। पर चतुर्भुज के आकार के अनियत होने से अनेक विकर्ण प्राप्त हो सकते हैं। पुनः सूत्र से एक निश्चित विकर्ण प्राप्त करने का कोई विशिष्ट कारण होना चाहिये। इससे प्रकट होता है कि वे एक निश्चित चक्रीय चतुर्भुज के विकर्ण को प्राप्त करना चाहते हैं। सूत्र की उत्पत्ति से भी स्पष्ट है कि वह चक्रीय चतुर्भुज के अद्वितीय विकर्ण को प्राप्त करने के लिये ही है।

ब्रह्मगुप्त के चतुर्भुज के क्षेत्रफल के सूत्र को इस विकर्ण के सूत्र के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया जाना चाहिये। आगे चलकर 15वीं शताब्दी के लीलावती के टीकाकार परमेश्वर ने ऐसा किया भी है। अगर ऐसा न करें तो इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि आखिर किस उपयोगर के लिये ब्रह्मगुप्त ने इस क्षेत्रफल के सूत्र के तुरन्त बाद विकर्ण का सूत्र प्रस्तुत किया है।

इस विवेचना के अनुसार ब्रह्मगुप्त के प्रस्तुत सूत्र को अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त कहने की अपेक्षा अस्पष्ट व्याख्या से परिपूर्ण कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। इस अस्पष्टता के कारण आगे श्रीधर आदि ने इसे सभी प्रकार के चतुर्भुजों के प्रति समन्वयनीय मान लिया था। पर भारतीय शास्त्र पद्धति के अनुसार किसी शास्त्रीय वचन की पूर्वापर संगति के साथ व्याख्या करना समुचित होता है।

टॉलेमी प्रमेय या ब्रह्मगुप्त प्रमेय

इस चक्रीच चतुर्भुज की चारों भुजाओं तथा इसके विकर्ण के बीच सहसम्बन्ध को

प्रकट करने के लिये एक सूत्र प्रायः 85–165 ई. Claudius Ptolemy के नाम पर टॉलेमी प्रमेय (Ptolemy theorem) के नाम से जाना जाता है। ब्रह्मगुप्त ने इससे कहीं आगे बढ़कर चतुर्भुज के विकर्ण की सही माप प्राप्त करने के लिये प्रस्तुत प्रमेय तथा एक अन्य प्रमेय को मिलाकर समन्वित रूप में प्रस्तुत किया है। इन्हें अलग–अलग इस प्रकार प्रकट करते हैं–चतुर्भुज की भुजाओं को a,b,c,d तथा विकर्ण को xy से संकेतित करने पर–

टॉलेमी प्रमेय → $ac + bd = xy$

ब्रह्मगुप्त प्रमेय → $ac + bd = xy$ तथा

$$\frac{ab+cd}{ad+bc} = \frac{x}{y}$$

ब्रह्मगुप्त ने इन दोनों को मिलाकर निर्मित एक सूत्र द्वारा **x, y** का मान प्राप्त किया है। स्पष्टतः ब्रह्मगुप्त ने अपनी मौलिकता बनाए रखते हुए सूत्र को अधिक व्यापक रूप दिया है।

अनिश्चित समीकरण की पद्धतियाँ

दो चरों वाले अनिश्चित समीकरण को हल करने का श्रेय प्रायः 260 ई. के विद्वान् डायफैंटस (Diophantus) को प्रदान किया जाता है।

आधुनिक ऐतिहासिक अन्वेषकों ने खोज की है तथा सभी आधुनिक गणितीय इतिहासज्ञों ने यह तथ्य माना है कि तथाकथित पाइथागोरस प्रमेय भारतीयों को पाइथागोरस के समय से बहुत बहुत पहले ज्ञात था। और जैसा कि अरब लोगों ने भारतीय अंक पद्धति पाश्चात्य संसार को साफ साफ हिन्दू अंक कहकर परिचित कराई किन्तु तब भी उसे सीखने वाले यूरोपियों ने उसे बिना विवेचन किए उन्हें अरबी अंक कहा, और कि सारा संसार उन्हें आज भी कहता है, उसी तरह यद्यपि पाइथागोरस ने अपना प्रमेय पाश्चात्य वैज्ञानिक तथा गणितीय संसार को, बहुत बहुत बाद में (भारत में उसकी खोज के)

प्रस्तुत किया, तथापि उसे आज भी पाइथागोरस प्रमेय कहा जाता है।

इस प्रमेय का गणित में बहुत उपयोग होता है। तथा सभी उसे उच्च ज्यामिति (घन ज्यामिति सहित), त्रिकोणमिति (समतल तथा गोलीय), वैश्लेषिक शाकव गणित कलन (अवकलन तथा समाकलन) तथा गणित की अन्य शाखाओं (शुद्ध तथा प्रयुक्त) की नींव के लिए अत्यावश्यक मानते हैं। तिस पर भी, आधारभूत रूप से इतने महत्वपूर्ण मूलभूत प्रमेय का प्रमाण (जैसा कि यूक्लिड आदि की प्रस्तुति द्वारा वैज्ञानिक विश्व को प्राचीनतम स्रोतों से ज्ञात था और जिस पर अभी भी आधुनिक विख्यात ज्यामिति विदों द्वारा व्याख्या की जाती है) अपनी दुष्कर लंबाई, अनाड़ी दुष्करता तथा आवश्यक लंबे समय के लिए कुख्यात है।

बहुत से वैदिक प्रमाण हैं तथा वे सभी यूक्लिड आदि द्वारा दिए गए प्रमाणों की अपेक्षा सरल हैं। उनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं।

पहला प्रमाण

यहां पर वर्ग क ख=वर्ग त झ + चारों अनुरूप समकोण त्रिभुज। इस सबके क्षेत्रफल क्रमशः इस प्रकार हैं: equation

दूसरा प्रमाण

रचना कख=गघ=ट, खग=घच, इसलिए कखग तथा गघच अनुरूप हैं। क ग च एक समकोण समद्विबाहु त्रिभुज है। समलंब चतुर्भुज कखघच=कखग+गघच+कगच इसलिए ट ठ /2+ड²2+ट ठ/2 = (ट+ठ/2) (ट+ठ)

इसलिए ड²=ट²+ठ², साध्य उपपन्न।

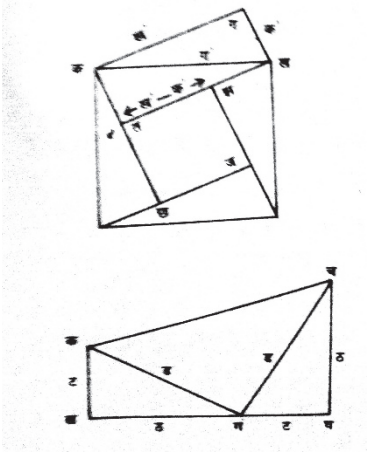

यहां पर हमने समलंब चतुर्भुज के क्षेत्रफल के साध्य का उपयोग किया है, स. च. का क्षेत्रफल = 1/2 ऊंचाई **X** समांतर भुजों का योग।

तीसरा प्रमाण

कच= खछ= गज= घझ= तथा चख= छग= जघ= झक कख वर्ग=चछ= वर्ग + चारों समकोण त्रिभुज इसलिए ड² + 4टठ/2 = (ट+ठ)² = ट² + 2टठ + ठ² इसलिए ड²=ट²+ठ² साध्य उपपन्न।

चौथा प्रमाण

(''समान त्रिभुजों का क्षेत्रफल, सजातीय रेखाओं के वर्ग के अनुपात में होता है।'' यहां हम इस साध्य का उपयोग कर रहे हैं।) यहां खघ, कग पर लम्बरूप है।

इसलिए त्रिभुज कखग, कखघ तथा खगघ समान हैं।

इसलिए कखग और कखघ के बीच तथा कखग और खगघ के बीच के क्षेत्रफल

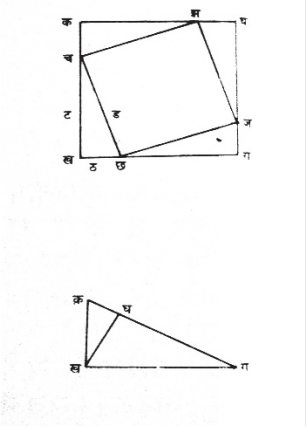

पांचवा प्रमाण

(यह प्रमाण निर्देशांक ज्यामिति से लिया गया है। और चूंकि आधुनिक शांकव गणित तथा निर्देशांक ज्यामिति (त्रिकोणमिति भी) के स्रोतों में पाइथागोरस प्रमेय भी हैं, इसलिए आधुनिक गणितज्ञ को यह विधि मान्य नहीं होगी। किन्तु चूंकि वैदिक पद्धथ्त में शांकव गणित तथा निर्देशांक ज्यामिति (कलन भी) के मूलभूत सिद्धांत पाइथागोरस प्रमेय से निरपेक्ष हैं, इसलिए यहाँ पर ऐसी कोई भी आपत्ति मान्य नहीं होगी।)

इसमें हम उस सूत्र का उपयोग करेंगे जो हमें दो बिन्दुओं के बीच की दूरी उनके निर्देशांकों की इकाई में बतलाता है। मान लीजिए कि दो बिन्दु अ और ब हैं और उनके निर्देशांक (a, o) तथा (o, b) हैं। तब AB = $\sqrt{(a-o)^2+(b-o)^2} = \sqrt{a^2+b^2}$

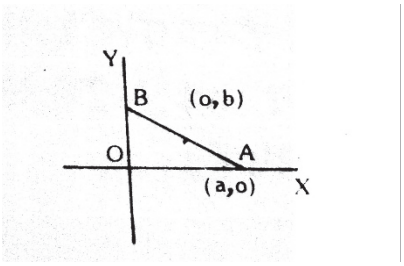

इसलिए $AB^2 = a^2+b^2$, साध्य सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न : -

1. शूल्व सूत्र के रचयिता कौन है।

क. बोधायन ख. कोपरनिकस ग. न्यूटन घ. केप्लर

2. समकोण त्रिभुज से पाइथागोरस प्रमेय का प्रतिपादन सर्वप्रथम किसके द्वारा किया गया था।

क. भास्कर ख. बोधायन ग. पाइथागोरस घ. उपर्युक्त सभी

3. शूल्व सूत्र का वर्णन किसमें मिलता है।

क. रेखागणित ख. बीजगणित ग. त्रिकोणमिति घ. ज्यामिति

4. बोधायन परिमेय को आधुनिक जगत में किस परिमेय के नाम से जानते है।

क. पाइथागोरस ख. ज्यामिति ग. क्वांटम घ. केप्लर

5. भारतवर्ष के रेखागणितज्ञों में सर्वोपरि नाम किसका आता है।

क. कमलाकर ख. बोधायन ग. भास्कर घ. पाइथागोरस

6. जिस त्रिभुज का एक कोण ९० अंश का हो उसे क्या कहेंगे।

क. समकोण ख. समद्विबाहु ग. समभुज घ.कोई नहीं

५.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि बौधायन भारत के प्राचीन गणितज्ञ और शुल्ब सूत्र तथा श्रौतसूत्र के रचयिता थे। ज्यामिति के विषय में प्रमाणिक मानते हुए सारे विश्व में यूक्लिड की ही ज्यामिति पढ़ाई जाती है। मगर यह स्मरण रखना चाहिए कि महान यूनानी ज्यामितिशास्त्री यूक्लिड से पूर्व ही भारत में कई रेखागणितज्ञ ज्यामिति के महत्वपूर्ण नियमों की खोज कर चुके थे, उन रेखागणितज्ञों में बौधायन का नाम सर्वोपरि है। उस समय भारत में रेखागणित या ज्यामिति को **शुल्व शास्त्र** भी कहा जाता था।

गणित के अनेक सिद्धान्तों के आदान प्रदान के विषय में स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में आग्रहपूर्ण अभिमत देखने में आते हैं। इसी सिद्धान्त की प्राचीनता को तथा किसी सूत्र की विशिष्टता को कम करके देखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस स्थिति में यह स्पष्ट विवेचन अतीव आवश्यक है कि अमुक सिद्धान्त अन्य देशों में प्राप्त सिद्धान्तों से कितना प्राचीन है अथवा यह कि अन्य देशों द्वारा अविष्कृत सूत्रों पर भारत ने कितनी मौलिकता या विशिष्टता प्रदान की है। इसे कुछ उदाहरणों से प्रकट करते हैं।

बौधायन के सूत्र वैदिक संस्कृत में हैं तथा धर्म, दैनिक कर्मकाण्ड, गणित आदि से सम्बन्धित हैं। वे कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित हैं। सूत्र ग्रन्थों में सम्भवतः ये

प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनकी रचना सम्भवतः ८वीं-७वीं शताब्दी ईसापूर्व हुई थी।

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

बोधायन – शूल्वसूत्र के रचयिता

वैदिक - वेदों में प्रतिपादित

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्।

रेखागणितज्ञ – रेखागणित को जानने वाला

पाइथागोरस – बोधायन परिमेय को ही वर्तमान में पाइथागोरस प्रमेय कहा जाता है।

समकोण त्रिभुज – जिसका एक कोण ९० अंश का हो

५.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क

1. ख
2. क
3. क
4. ख
5. क

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गणित शास्त्र की भारतीय परम्परा – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा

2. वैदिक गणित

3. ग्रहगति का क्रमिक विकास – पं. रामजन्म मिश्र

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वैदिक गणित

2. गणित शास्त्र की भारतीय परम्परा

3. ग्रहगति का क्रमिक विकास

4. लीलावती

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. बोधायन परिमेय से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

2. बोधायन परिमेय का प्रतिपादन कीजिये।

3. पाइथागोरस का प्रमेय क्या है।

4. प्रमाणों द्वारा पाइथागोरस प्रमेय को सत्यापित कीजिये।

5. बोधायन का परिचय देते हुए उनके सूत्रों को लिखिये।

इकाई – ६ शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली

इकाई की संरचना

६.१ प्रस्तावना

६.२ उद्देश्य

६.३ शून्य का परिचय एवं मूलोत्पत्ति सिद्धान्त

- ६.३.१ प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्य शास्त्र में शून्य
- ६.३.२ शून्य के प्रकार
- ६.३.३ गणित शास्त्र में शून्य

६.४ शून्य से अंकोत्पत्ति एवं महत्व

- ६.४.१ भारतीय अंक और अंग्रेजी अंकों का अन्तर
- ६.४.२ शून्य के पर्याय
- ६.४.३ अंक स्थान

६.४ दार्शनिक प्रणाली

६.५ सारांश

६.६ पारिभाषिक शब्दावली

६.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

६.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

६.९ सहायक पाठ्यसामग्री

६.१० निबन्धात्मक प्रश्न

६.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-608 के प्रथम खण्ड की छठी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली। इसके पूर्व में बोधायन परिमेय संबंधी इकाई का अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष के प्रमुख सैद्धान्तिक पक्षों में से ही एक शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली से अवगत होने जा रहे है।

भारतीय अंकों का मूल शून्य (०) है क्योंकि शून्य से ही समस्त अंकों की उत्पत्ति हुई है। शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली से सम्बन्धित आप विविध विषयों का अध्ययन करेंगे।

अत: आइए इस इकाई में हम सभी शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली से सम्बन्धित गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

६.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- शून्य की परिभाषा क्या है।
- शून्य से कैसे सभी अंकों की उत्पत्ति हुई है।
- भारतीय अंक कौन-कौन से है।
- रोमन अंक क्या है।
- दार्शनिक प्रणाली क्या है।

६.३ शून्य का परिचय एवं मूलोत्पत्ति सिद्धान्त

आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में अंग्रेजी अंकों का प्रचलन इतने तीव्र वेग से बढ़ा है कि प्राचीन भारतीय अंकों का धीरे-धीरे प्रयोग कम से कम होने लगा है। आजकल इन अंग्रेजी अंकों को कुछ लोग भ्रमवश 'रोमन अंक' नाम से भी अभिहित कर रहे हैं। किसी भी गणितीय प्रक्रिया और गणितीय चिन्ह को सर्वथा विस्मृत होने और लुप्त होने में दो सौ से तीन सौ वर्ष लगते हैं। अतः यदि अंग्रेजी अंकों के प्रसार और प्रयोग की यही गति और स्थिति बनी रही तो भारतीय अंकों के विलुप्त होने का खतरा उभर पड़ेगा। व्यवहार में ऐसा इसलिए हो रहा है; क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते

प्रभाव के कारण ज्यादातर लोग उन्हीं अंकों को जानते हैं जिन्हें वे कान्वेन्टों या स्कूलों में सीखते हैं। आज बैंकों, वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों तथा छापखाने एवं आफसेट मशीन के प्रयोगों में अंग्रेजी अंकों की उपलब्धता आसान है। यहाँ तक की पादटिप्पणियों एवं वेदमंत्रों की संख्या लिखते समय भी अंग्रेजी अंकों का ही प्रयोग किया जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। अंग्रेजी अंकों को रोमन अंक भी कहना न्यायसंगत नहीं है; क्योंकि पाँचवी शताब्दी में रोम पराजित हो कर कंस्तुताइन राजा के कार्यकाल में अपना प्राचीन स्वरूप बोध विस्मृत कर चुका है। पाँचवी शताब्दी से पूर्व का रोम और उसके बाद के रोम में सभ्यतागत अनेक बदलाव आ चुके हैं।

६.३.१ प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्य शास्त्र में शून्य -

वेद में शून्य का प्रयोग उपलब्ध है। वहाँ किसी अनुपलब्ध वस्तु को चाहने वाले के लिये 'शून्यैषी' का प्रयोग किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है–

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्रपत मेह संस्थाः।

(अथर्ववेद 14.2.19)

ग्रीक में इसका प्रतिरूप केन्योस् (Kenyos) शब्द प्राप्त होता है। इससे इसकी व्यापकता प्रमाणित है। अरबी भाषा के सिफ्र शब्द के द्वारा शून्य के 'खाली' अर्थ का अरबी अनुवाद किया गया है। इस सिफ्र से इंग्लिश का zero शब्द विकसित है।

वेद के पश्चात् महाभारत आदि में अभाव या खाली अर्थ में इस शब्द का नियमित रूप से प्रयोग प्राप्त होता है। आगे चलकर बौद्ध दर्शन के शून्यवाद नामक सम्प्रदाय में एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में इसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक महान् दार्शनिक नागार्जुन ने शून्यता को सभी दृष्टियों में सर्वश्रेष्ठ बताया[1]। इनके अनुसार इसका मौलिक अर्थ सन् भी नहीं असत् भी नहीं, दोनों भी नहीं, दोनों का प्रतिषेध भी नहीं–इस प्रकार चारों कोटियों से विनिर्मुक्त तत्त्व है; क्योंकि विश्व के किसी पदार्थ की व्याख्या इन चारों में से किसी भी कोटि में कर पाना सम्भव नहीं है। यह दर्शन शून्यता का अर्थ चारों कोटियों से विनिर्मुक्त किसी पाँचवें तत्त्व को नहीं बताता, अपितु इन्हीं चारों की अव्याख्येयता, अनिर्वचनीयता को सूचित करता है। नागार्जुन ने कहा है कि जो लोग इस शून्यता को कोई पाँचवें तरह का तत्त्व समझने लगते हैं, उन्हें समझाने के लिये हमारे पास कोई दवाई नहीं है[1]। इस प्रकार 'शून्यता' जगत् के पदार्थों को चारों कोटियों से विनिर्मुक्त सिद्ध करती है।

इस शब्द के सबसे प्राचीन अर्थ का सकी व्युत्पत्ति से अनुमान किया जा सकता है।

यद्यपि गणवार्तिककरा ने अपनी व्युत्पत्ति से इसके मौलिक अर्थ को मिटा दिया है। उन्होंने इस शब्द को किसी–किसी प्रकार सिद्ध करने के आवेश में इसे कुत्ते अर्थवाले श्वन् शब्द से

हित अर्थ में यत् प्रत्यय द्वारा सिद्ध किया है[2]। यहाँ पूछा जा सकता है कि एकान्त या खाली स्थान से कुत्ते का क्या हित सिद्ध होता है!!

इस शब्द की बढ़िया व्युत्पत्ति के संकेत वैदिक साहित्य से प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में सृष्टि–प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा है कि पहले असत् ही था, वह सत् हुआ तथा अण्ड बना। वह साल भर तक बढ़ता रहा तथा उसके बाद फूट कर रजत वर्ण की पृथिवी तथा सुवर्ण–वर्ण के द्युलोक के रूप में विभक्त हो गया[3]। इससे दूर–दूर तक खाली स्थान आकाश परिव्याप्त हो गया।

इस बढ़ने तथा सूजने आदि अर्थ में 'शून' शब्द का प्रयोग वेदों में प्राप्त है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह शब्द सूजने अर्थ वाली श्वि धातु से भूतकाल में क्त प्रत्यय होकर निर्मित होता है। वास्तव में उस अण्ड के इस सूजे हुए खाली स्थान का नाम ही शून्य अथवा आकाश है। इन वर्णनों को मिलाकर देखने से इसकी यही व्याख्या सर्वाधिक सुसंगत प्रतीत होती है।

इससे स्पष्ट है कि शून्य के विकास के लिये मूलतः आकाश के स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त हुई है। अतः यहाँ प्रथम न्याय–वैशेषिक में परिकल्पित आकाश की अवधारणा को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं। वैशेषिक सूत्र में आकाश के विषय में उस समय प्रचलित दो प्रकार के मत प्रस्तुत किये गए हैं, जो इस प्रकार हैं–

प्रथम मत के अनुसार आकाश शून्यात्मक या अभाव स्वरूप है। यह इस स्वरूप वाला होकर कमरे से निष्क्रमण, उसके अन्दर प्रवेशन इत्यादि क्रियाएँ कराने का हेतु होता है[1]। यह स्थिति स्पर्श वाले भाव द्रव्यों से भिन्न है। पृथिवी आदि भाव पदार्थ जगह घेरते हैं तथा वे अपनी जगह पर किसी को आने नहीं देते। इससे विपरीत स्थिति वाला होने से आकाश अभावस्वरूप है[2]। 'खाली स्थान', 'कुछ नहीं' की प्रतीति ही आकाश की प्रतीति है।

न्याय–वैशेषिक के द्वितीय सिद्धान्त मत के अनुसार आकाश एक भाव पदार्थ है। पर वह छोटे–छोटे जगह घेरने वाले अणुओं से निर्मित नहीं, अपितु विभु है। इस प्रकार महत्परिमाण वाला होने से अनन्त है। किसी के भी महत्त्व की परिमाप जिन उपायों या उपकरणों से हो सकती है, वह उनसे भी कहीं बढ़ कर है। इस प्रकार वह अगम्य तथा अपरिभाष्य है। यह स्थिति अनन्त (infinity) के इस आधुनिक वर्णन से तुलनीय है कि अनन्त ऐसा बड़े से बड़ा है जो उस बड़े से भी बड़ा है, जितना बड़े से बड़ा हम सोच सकें[3]। अनन्त की यह अवधारणा अणु की सूक्ष्मता की अनन्तता का दूसरा छोर है[4]।

दर्शन–जगत् में इस प्रकार शून्य को भी दो प्रकार से समझने की परम्परा रही है।

साहित्य–शास्त्र में शून्य

साहित्य–शास्त्र में भी इस शब्द के दोनों अर्थों में प्रयोग प्राप्त होते हैं। प्रथम अथर्ववेद के शून्यैषी (= शून्य को चाहने वाला) जैसे शब्द 'अभाव' अर्थ को रख कर भी 'कुछ है' की प्रतीति कराते हैं। द्वितीय अर्थ का वर्णन करते हुए उपनिषद् का एक सुन्दर मन्त्र इस प्रकार है–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

(बृहदारण्यक उपनिषद् 5.1.1)

अर्थात् यह ऐसा पूर्ण है जिस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही बच जाता है। अनन्त का इससे बढ़िया वर्णन और क्या हो सकता है!!

भागवत के एक रोचक श्लोक में दोनों अर्थों वाले शून्य का एक साथ प्रयोग देखने को मिलता है–

यत्तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मम् अशून्यं शून्यकल्पितम्।

अर्थात् वह परम सूक्ष्म ब्रह्म शून्य नहीं है, फिर भी शून्य के रूप में प्रकल्पित है। यहाँ पहले शून्य का अर्थ अभाव तथा दूसरे शून्य का अनन्त अर्थ है। इस प्रकार 'वह ब्रह्म शून्य या अभावस्वरूप नहीं, फिर भी शून्य या अनन्तस्वरूप है', यह इसका सूक्ष्म अर्थ है।

६.३.२ शून्य के स्वरूप

शून्य के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं–

I. शून्य अभावस्वरूप है। पर यह ऐसा नहीं जो हमारे ज्ञान का विषय न बन सके। वास्तव में वह बोध्य है, व्याख्येय है। वह विविध कार्यों का कारण भी बन सकता है। जैसे–न्याय में घट कार्य का दण्ड, चक्र, चीवर, कुलाल के साथ 'वर्षा के अभाव' को भी कारण माना जाता है। यह वर्षाऽभाव न्यायनय में वर्षा के अभावस्वरूप होकर भी एक पदार्थ है। वेदान्त सिद्धान्त में यह वर्षा से भिन्न कोई भावान्तर स्वरूप है। दोनों ही स्थितियों में यह विविध संक्रियाओं का निष्पादक माना जाता है।

II. शून्य सर्वथा अपरिमेय या अव्याख्येय है। वह सभी कोटियों से रहित है। हम अपने दैनिक जीवन में जिन–जिन विमाओं (dimension) को जानते हैं, उनसे वह भिन्न है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी चतुर्थ विमा के आकार को प्राप्त कर सके। यह एक ओर अणुता के आनन्त्य को रखता है, जिसे परमाल्प कहते हैं। दूसरी ओर महत्त्व के आनन्त्य को रखने से परममहान् है। जिसका न्याय में एक उदाहरण आकाश है। दोनों ही दशाओं में यह सर्वथा अगम्य एवं अबोध्य है। इस पर कोई क्रिया नहीं हो सकती। अथवा यों कहें कि इस पर की गई किसी संक्रिया से परिणाम में कोई भिन्नता नहीं आती। इसके लिये छोटा, बड़ा या कम, अधिक जैसे शब्दों के प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है। दर्शनशास्त्र में इस 'अनन्त से जगत्

उत्पत्ति', इसमें विलय' इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग केवल समझने का उपायमात्र है। वस्तुतः उसमें ऐसा कुछ नहीं होता।

६.३.३ गणित–शास्त्र में शून्य

यह निरूपण बहुत रोचक है कि गणित–शास्त्र में आकाश के स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त करते हुए गणितीय संक्रियाओं द्वारा दोनों प्रकार के शून्य को प्राप्त किया गया है। इसीलिये महावीर आदि विद्वानों ने आकाश के पर्यायवाचक शब्दों को शून्य का पर्याय निरूपित किया है[1]।

संख्या–लेखन हेतु प्रथम प्रकार के शून्य का उपयोग

गणित–शास्त्र में यह शून्य अभावस्वरूप होकर भी संख्या के अन्तर्गत है। इसका अलग नाम तथा प्रतीक चिन्ह है। यह ठीक उसी प्रकार का है, जैसे न्याय में अभाव असत् स्वरूप होकर भी पदार्थ है। गणित में शून्य का प्रतीक अन्य किसी संख्या के अभाव की सूचना देता है। फिर भी वह अन्य संख्याओं के समान अपने से दाहिने या बाईं ओर की संख्याओं के मान को बदलने की क्षमता रखता है। 1 की दशगुणज तथा उसके वर्ग, घन आदि संख्याओं के लेखन में 1 से दाहिने ओर क्रमशः शून्यों की संख्या बढ़ती जाती है तथा ये शून्य क्रमशः 1 के दशगुणित तथा इसके उत्तरोत्तर वर्धमान मान की सूचना देते हैं। इसी प्रकार 1 से 10 से तथा उसके वर्ग, घन आदि से विभाजित संख्याओं के लेखन में 1 से बाईं ओर दशमलव बिन्दु एवं 1 के बीच क्रमशः शून्यों की संख्या बढ़ती जाती है तथा ये क्रमशः 1 के उत्तरोत्तर ह्रासमान मान को प्रकट करते हैं।

गणित–शास्त्र में इस प्रकार का संख्या–लेखन दशगुणोत्तर पद्धति के आधार पर विकसित है। इस पद्धति से लिखे गए प्रत्येक अंक का दशगुणित स्थानीय मान होता है। इसमें उक्त विशेषताओं वाले शून्य का तथा इसके एक सुनिश्चित प्रतीक का प्रयोग अनिवार्य है। गणित के लिये शून्य चिन्ह को प्रकट करते हुए सबसे पहला प्रयोग प्रायः 200 ई. पू. में विरचित पिंग छन्दः सूत्र में प्राप्त हुआ है[1]। इस प्रकार इस समय इसका कोई प्रतीक चिन्ह अवश्य विकसित हो गया था। इससे इस समय स्थानीय मान पद्धति द्वारा संख्या–लेखन की सूचना प्राप्त होती है। इस पद्धति का स्पष्ट संकेत ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी के योग–सूत्र व्यास–भाष्य के एक सुन्दर विवरण से प्राप्त होता है। वहाँ कहा है कि एक ही रेखा सौ के स्थान पर 100 का दस के स्थान पर 10 का तथा वही 1 के स्थान पर 1 अर्थ प्रदान करती है[2]।

इस पद्धति से लेखन का अस्पष्ट संकेत ई.पू. 8वीं शताब्दी के निरुक्तकार यास्क के 'दश' के निर्वचन से प्राप्त होता है। यह इस प्रकार है–

दश दस्ता–निरुक्त 3.10

अर्थात् दस नाम इसलिये है; क्योंकि इस संख्या तक संख्या–लेखन के लिये अंक परिपूर्ण हो जाते हैं। इसके पश्चात् किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या–लेखन के लिये इन्हीं अंकों की पुनरावृत्ति की जाती है[1]। यह स्थिति केवल स्थानीय मान पर आधारित लेखन–पद्धति में ही सम्भव है। अन्य किसी भी पद्धति में इससे अधिक अंकों की अनिवार्य आवश्यकता होती है। इससे यह भी प्रकट है कि निरुक्तकार ने 9 के अलावा शून्य को भी अतिरिक्त अंक के रूप में स्वीकार किया है।

वेद में आकाश या अवकाश से परिपूर्ण गोल छिद्र के लिये 'ख' का प्रयोग प्राप्त है[2]। इस आधार पर आगे चल कर इस अतिरिक्त अंक के लिये गोलाकार प्रतीक विकसित हुआ।

६.४ शून्य से अंकोत्पत्ति एवं महत्व -

अंकों का शब्दात्मक शरीर और संख्यात्मक शरीर पहली बार भारतवर्ष की धरती पर ऋषियों के हृदय में अवतरित हुआ। इसीलिए वे अंककृद् हैं। यह देश ब्रह्म और माया का चिन्तक देश है। ब्रह्मविद्या के अन्वेषण के क्रम में अंकों की उत्पत्ति हुयी है ऐसा हम साधिकार कह सकते हैं; क्योंकि भारतवर्ष की आर्षविद्या के उत्स ग्रन्थ वेद हैं। 'आकाश' और 'समुद्र' वेदान्तज्ञान में उदाहरण के तौर पर अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रयुक्त हैं। आकाश अनादि है; अनन्त है, महाबिलम् है। समुद्र की तरंगें माया की तरह तरंगायित होती हैं। आकाश को शून्य कहा गया है। यहीं से अंकों में शून्य का समावेश होता है। स्वतंत्ररूप से शून्य महत्त्वहीन था और है; परन्तु महान् भारतीय गणितज्ञों एवं ऋषियों की दृष्टि में वह उत्पादक अंक है।

एक	द्वि	त्रि	चतुः	पंच	षट्	सप्त	अष्ट	नव	शून्यम्
1	2	3	4	5	6	7	8	9	0

सम्पूर्ण विश्व में ऋषियों द्वारा अन्वेषित अंकों की जानकारी धीरे धीरे पहुँची। ऋषि वैज्ञानिकों ने शून्य, नौ अंक तथा स्थानमान का अन्वेषण ईसा के पूर्व वेद एवं वेदांककाल में कर लिया था। जो आकाश को जानता है वह शून्य को जानता है। ऋषियों ने वैदिक संहिताओं में अंकों की स्थिति को दर्शाया है। उनके लिए आकाश शून्य, वृत्त या विन्दु था। पृथ्वी क्षैतिज रेखा थी।

शून्य से अंकोत्पत्ति-

शून्य का आरम्भिक स्वरूप बिन्दु की तरह या लघुवृत्त की तरह रहा है। इनमें से पहले कौन-सा रूप प्रचलित था यह कहना कठिन है। आकाश को यदि चित्र रूप में उपनिबद्ध करना हो तो उसे

शून्यांक से ही किया जा सकता है। अतः प्रचलित लघुवृत्त (0) को ही शून्य मानें तो अंकों की उत्पत्ति निम्नलिखित रूप में कल्पित हो सकती है-

अंकों के निर्माण में शून्य, अर्धशून्य और रेखा का प्रयोग किया गया था। शून्य आकाश का वाचक है और रेखा क्षितिज का। आकाश और क्षितिज के नौ प्रकार के सम्मेलन से नौ अंकों की उत्पत्ति हुयी। देश और काल के महामिलन से द्वैतरूपी अंकों की उत्पत्ति हुयी है। ब्राह्मी, खरोष्ट्री एवं देवनागरी आदि सभी लिपियों में अंकों की स्थिति शून्य और रेखा से ही प्रकट हुई है।

'शून्य' का महत्त्व'-

निःसंदेह शून्य की अवधारणा एवं उत्पत्ति गणित, खगोल और विज्ञान जगत् के लिए एक ईश्वरीय वरदान लेकर पृथ्वी पर आयी।

ईसा से पूर्ववर्तीमुनि 'पाणिनि' के पूर्ववर्ती या समकालीन शाकल्यऋषि ने वृत्त के 360 अंशों की चर्चा की है और 'ज्या' का मान बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि शून्य अंक भारतवर्ष में बहुत पहले ज्ञात हो चुका था। शून्य के ज्ञान के बिना वृत्त और उसके अंश की परिकल्पना नहीं की जा सकती थी। शून्य के महत्त्व को हम कुछ बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं-

- शून्य आकाश की तरह व्यापक और उत्पादक है।
- शून्य एक निष्क्रिय गणित प्रक्रिया है जो अंकों की अनन्त सक्रियता को रूपायित करता है।
- शून्य से ही सारे अंक निकले हैं।
- शून्य वैदिक ज्ञान-विज्ञान की कुक्षी से अवतरित हो कर वैश्विक गणित प्रक्रिया को जन्म देता है।
- शून्य एक ऐसा बिन्दु है जिससे सिन्धु बनता है।
- शून्य दर्शन (वैदिक) और गणित दोनों का वर्ण्य विषय है।
- शून्य विश्व की आकृति का परिचायक है चाहे उसका स्वरूप बिन्दु की तरह हो या वृत्त की तरह।

- 'शून्य आकाश का वाचक है और रेखा पृथ्वी का' शून्य और रेखा यानि आकाश और पृथ्वी के महामिलन से अंकों की उत्पत्ति हुयी।

६.४.१ भारतीय अंक और अंग्रेजी अंक का अन्तर-

भारतीय अंक और अंग्रेजी अंक के सैद्धान्तिक अन्तर को समझना आवश्यक है। यद्यपि भारतवर्ष का ही अंक (गणित) अरब और यूरोप में धीरे धीरे हजार बारह सौ वर्षों में व्यवसाय के माध्यम से पहुँचा था तथापि अंक संकेत में फेर बदल भी कालान्तर में हो गया।

भारतीय अंक	१	२	३	४	५	६	७	८	९
अंग्रेजी अंक	1	2	3	4	5	6	7	8	9

भारतीय अंक में एक की उत्पत्ति आज भी शून्य को दर्शा रही है; जबकि अंग्रेजी अंक एक रेखा मात्र को दिखा रहा है। भारतीय अंकों में 4, 5, 7 और 9 ऊर्ध्वगामी हैं; जबकि अंग्रेजी अंक का 4, 5 समानान्तरगामी और 9 अधोगामी है। 7 भी अधोगामी है। भारतीय अंक 4, 5 अधः से ऊर्ध्व चेतना को रेखांकित करता है।

अंकों की समानता-

भारतीय 6 अंक तथा 3 अंक से अंग्रेजी के 6 एवं 3 अंक संपूर्णतः मेल खाते हैं। अंग्रेजी अंकों में सर्वथा दुर्गति 7 और 9 की है। ये सूक्ष्म स्तर पर हानिकारक तथा अशुभ हो गये हैं। इनका प्रयोग किसी शुभकार्य में नहीं किया जा सकता है।

रोम अंक-

रोम अंक दार्शनिक विचारों से युक्त हैं। इनका स्वरूप निम्नलिखित है-

प पप पपप पअ अ अप अपप अपपप पग ग

यहाँ लघुवृत्त वाले शून्य (0) का प्रयोग नहीं है। यहाँ बिन्दु वाले शून्य (.) का प्रयोग हुआ है। नौ और दश अंक तिर्यक् चेतना वाले हैं। शेष सभी अंक ऊर्ध्व चेतना वाले हैं।

तंत्र में अंक प्रयोग-

भारतवर्ष के ''आगम'' में यंत्र बनाने की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही प्रचलित है। यंत्र बनाने में यदि अंग्रेजी अंकों का प्रयोग किया जायेगा तो यह सुनिश्चित है कि उनका प्रभाव नहीं प्राप्त किया जा सकता। अंक सात और नौ ऊपर्ध्वगमन को अधःगमन में बल देंगे। अतः ऐतिहासिक एवं अदृश्यप्रभाव उत्पादक अंकों को भारतीय लिपि में ही लिखना श्रेयस्कर है। अंग्रेजी अंकों को बहुप्रचारित कर देने मात्र से उनकी प्रभावहीनता को दूर नहीं किया जा सकता। साहित्य में प्रयुक्त कूट अंक और अंकों के स्वरूप से उत्पन्न साहित्यिक अभिव्यंजना भी तब मर जायेगी जब हम भारतीय लिपि में अंकों को लिखना बन्द कर देंगे। वे मुहावरे भी विफल हो जायेंगे जो मैत्री को तीरसठ (63) और शत्रुता या विमुखता को छत्तीस (36) के रूप में स्थापित करते हैं।

यजुर्वेद में अंक

1. एका च में तिस्त्रश्चमे तिस्त्रश्च्चमे पंचचमेपपंचचमे सप्तचमे सप्तचमे नवचमे नवचमऽएकादशचमऽएकादशचमे त्रयोदशचमे त्रयोदशचमे पंचदशचमे पंचदशचमे सप्तदशचमे सप्तदशचमे नवदशचमे नवदशचमऽएकविंशतिश्चमऽ-एकविंशतिश्चमे त्रयोविंशतिश्चमे त्रयोविंशतिश्चमे पंचविंशतिश्श्चमे पंचविंशतिश्चमे सप्तविंशतिश्चमे सप्तविंशतिश्चमे नवविंशतिश्चमे नवविंशतिश्चमऽएकत्रिंशच्चमऽएकत्रिंशच्चमे त्रयस्त्रिंशच्चमे यज्ञेन कल्प्पन्ताम्।

2. चतस्त्रश्चमेष्टौचमेष्टौचमे द्वादशचमेद्वादशचमे षोडशचमेषोडशचमे विंशतिश्चमेविंशति श्चमेचतुर्विंशतिश्चमे चतुर्विंशतिश्चमेष्टाविंशति-श्चमेष्टाविंशतिश्चमे द्वात्रिंशच्चमे द्वात्रिंशच्चमे षट्त्रिंशच्चमेषट्त्रिंशच्चमे चत्वारिंशच्चमे चत्वारिंशच्चमे चतुश्चत्वारिंशच्चमे चतुश्चत्वारिं-शच्चमेष्टाचत्वारिंशच्चमे यज्ञेन कल्प्पन्ताम्।।

६.४.२ शून्य के पर्याय

खम्, गगन, आकाश, अम्बर, अभ्र, वियत् व्योम, अंतरिक्ष, नभ, पूर्णम्, रन्ध्र, विष्णुपद, जलधरपथ आदि पर्यायवाची शब्द 'शून्य' के लिए प्रयुक्त हुये हैं तो संख्या के लिए अंक भी कुछ ही वर्षों के अन्दर ढूँढ़ लिये गये होंगे। अतः भारतवर्ष में अंकोत्पत्ति का इतिहास उतना ही पुराना है जितना वेदों का काल प्राचीन है।

६.४.३ अंकस्थान

यजुर्वेद संहिता के सत्तरहवें अध्याय में विशाल संख्या को व्यवस्थित कर उनकी अंकस्थान संज्ञा निर्धारित की गई है। यह निम्नलिखित रूप में है-

एक, दश, शत, सहस्त्र, दश सहस्त्र, अयुत, दश अयुत, नियुत, दश नियुत, प्रयुत, दश प्रयुत, अंर्बुद, दश अर्बुद, समुद्र, दश समुद्र, मध्य, दश मध्य, अन्त, दश अन्त, परार्ध।।

यहाँ 1,00,00,00,00,00,00,00,00,0 अंक स्थान तक संज्ञा का निर्धारण हुआ है।

इससे सिद्ध होता है कि वेद काल में ही 20 अंक स्थान तक की गिनती सुनिश्चित हो चुकी थी। संज्ञा के निर्धारण में बाद में काफी फेर बदल भी हुआ है; पर 20 अंक स्थान से अधिक संज्ञा बढ़ाने की चेष्टा किसी भी गणितज्ञ द्वारा नहीं की गई।

अंकों में 'कोटि' शब्द का प्रयोग हुआ तो ज्योतिष और ज्यामिति में भी भुज और कोटि का प्रचलन दिखलाई दिया।

भास्कराचार्य की लीलावती में 18 अंक स्थान तक की संज्ञा दी गयी है; जो निम्नलिखित है-

एक-दश-शत-सहस्त्रा-ऽयुत-लक्ष-प्रयुत-कोटयः क्रमशः।
अर्बुदम्-अब्जं-खर्व-निखर्व-पहापद्य-शंखवस्तस्मात्।।
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुकोत्तराः संज्ञाः।
संख्याया स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः।।

अंक या संख्या का स्थान निर्धारण व्यवहार के लिए पूर्वाचार्यों ने किया है। ये हैं- एक, दश, शत, सहस्त्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापंच, शंकु, जलधि, अन्त्य, मध्य, परार्ध। ये कुल 18 स्थान हैं। हिन्दु गणित में व्यवहार में 20 अंक स्थान हमेशा प्रचलित रहे हैं। इनकी वर्तमान-कालिकी स्थानसंज्ञा निम्नवत् है-

१	एक	(इकाई)	१
२	दश	(दहाई)	१0
३	शत	(सैकड़ा)	१00
४	सहस्त्र	(हजार, सहस्त्रार)	१000
५	दश सहस्त्र	(दश हजार)	१0000
६	लक्ष	(लाख)	१00000
७	दश लक्ष	(दश लाख)	१000000
८	कोटि	(करोड़)	१0000000
९	दशकोटि	(दश करोड़)	१00000000
१0	अर्बुद	(अरब)	१000000000
११	दश अर्बुद	(दश अरब)	१0000000000
१२	खर्व	(खरब)	१00000000000
१३	दश खर्व	(दश खरब)	१000000000000
१४	नील	(नील)	१0000000000000
१५	दश नील	(दश नील)	१00000000000000
१६	पद्य	(पद्य)	१000000000000000
१७	दशपद्य	(दश पद्य)	१0000000000000000

१८	शंख	(शंख)	१०००००००००००००००
१९	दश शंख	(दश शंख)	१००००००००००००००००
२०	महा शंख	(महा शंख)	१०००००००००००००००००

बाद में जलधि (समुद्र), मध्य और अन्त्य की संज्ञा को बदल कर नील, पद्य, शंख कर दिया गया है। वैदिक शब्द 'परार्ध' श्रेष्ठ शब्द है। इसमें 'अर्धस्य पारम्' का भाव निहित है, अर्थात् लक्ष्यप्राप्ति। अंक स्थान की पूर्णता का वाचक है परार्ध। शंख जलधि से उत्पन्न है; पूर्णता का वाचक नहीं है।

वैदिक ज्ञान समृद्धि में न्यूनता और अपूर्णता खोजने वाले इतिहासकारों के द्वारा यह घोषित करना कि 'शून्य बहुत बाद में खोजा गया' एक मूर्खतापूर्ण विद्वेषभाव का परिचायक है। भारतवर्ष में अंकों की परम्परा वैदिक ज्ञान की धारा से ही पुष्ट हुयी है। अंकों का सनातन संस्कृति में इतना समादर है कि ये ब्रह्म, रुद्र, विष्णु, शक्ति आदि के अर्थ में भी रुढ़ हो गये। अपने अंकों को बचाना, उन्हें जीवित रखना अपनी संस्कृति को जीवित रखने के तुल्य है।

६.५ दार्शनिक प्रणाली

गणितीय संक्रियाओं से प्रथम प्रकार के शून्य की उपलब्धि

सर्वप्रथम 628 ई. के महान् गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने गणितीय संक्रियाओं द्वारा इस प्रथम अभावरूप शून्य को उपलब्ध करने का यह प्रकार बताया है–

धनयोर्धनमृणमृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम्।

(ब्राह्मस्फुट–सिद्धान्त 18.30)

अर्थात् दो समान धन संख्याओं में से एक धन संख्या का अन्तर दो समान ऋण संख्याओं में से एक ऋण संख्या का अन्तर तथा क्रमशः धन, ऋण चिन्ह वाली दो समान संख्याओं के योग का परिणाम 'ख' अथवा शून्य होता है। इस प्रकार–

$+5 - (+5) = 0$

$-5 - (-5) = 0$

$+5 + (-5) = 0$

यह शून्य अन्य संख्याओं के साथ गणितीय संक्रिया द्वारा अनेक परिणाम उपस्थित करता है।

ब्रह्मगुप्त के पश्चात् त्रिशतिकाकार श्रीधराचार्य ने गुणन की संक्रियाओं द्वारा इस प्रकार के शून्य को प्राप्त करने का यह उपाय बताया है–

खस्य गुणनादिके खं संगुणने खेन च खमेव।

(त्रिशतिका सूत्र 8)

अर्थात् शून्य को किसी राशि से गुणा इत्यादि करने पर या शून्य से किसी राशि को गुणित करने पर परिणाम शून्य ही होता है। इस प्रकार उन्होंने दो परिस्थितियों की संकल्पना की है तथा उन दोनों से एक ही परिणाम प्राप्त किये हैं। जैसे–

$0 \times 5 = 0$ सही है; क्योंकि $\frac{0}{5} = 0$

इस गुणन के सही सिद्ध होने पर गुणन में क्रम विनिमेय गुण लागू होने के कारण $5 \times 0 = 0$ भी सिद्ध होता है।

यहाँ त्रिशतिकाकार ने आदि पद के प्रयोग से यह प्रकट किया है कि शून्य का वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल इत्यादि भी शून्य होता है। भास्कराचार्य का भी ऐसा ही मानना है[1]। अतः–

$0^2 = \sqrt{0}, 0^3 = \sqrt[3]{0} = 0$।

साथ ही यहाँ त्रिशतिकाकार ने 'आदि' पद से यह भी ध्वनित किया है कि शून्य को किसी राशि से भाग देने पर भी उसका परिणाम शून्य होता है। इस तथ्य को हम पूर्वोक्त रीति से विपरीत क्रम से सही सिद्ध कर सकते हैं–

$\frac{0}{5} = 0$ सही है; क्योंकि $0 \times 5 = 0$

इसी प्रकार $\frac{0}{-5} = 0$; क्योंकि $0 \times -5 = 0$

पर त्रिशतिकाकार ने शून्य से किसी राशि को भाग देने पर उसके परिणाम के विषय में सावधानीपूर्वक कुछ नहीं कहा है। सम्भव है त्रिशतिकाकार को इसके परिणाम के अपरिभाष्य होने का आभास रहा हो। आधुनिक गणित में इस संक्रिया का प्रतिषेध किया जाता है[1]; क्योंकि यह संक्रिया हमें एक गलत निष्कर्ष की ओर प्रेरित करती है। यदि हम इस संक्रिया को करते हुए $\frac{5}{0} = 0$ ऐसा कहें तो पूर्वोक्त रीति से यह कहना होगा कि $0 \times 0 = 5$ जो कि सर्वथा गलत है। सभी प्राचीन या अद्यतन विद्वान् 0×0 या $0^2 = 0$ ही मानते हैं, जैसे ऊपर दिखाया गया है। अतः यह संक्रिया प्रतिषद्ध है।

पर महावीराचार्य आदि कुछ विद्वानों ने शून्य से किसी राशि को भाग देने का परिणाम शून्य बताया है[2]। इसे आधुनिक गणित में उपरिलिखित कारण से स्वीकार नहीं किया जाता।

इस प्रकार शून्य के अभाव सूचक होने से भारतीय गणित में 'अंक' शब्द 9 अर्थ को प्रकट करता है[3]। पर जैसा कि ऊपर कहा गया कि महर्षि यास्क ने शून्य के अलग प्रतीक चिन्ह होने, गणितीय संक्रियाओं में भाग लेने, दशगुणोत्तर पद्धति में स्थानीय मान निर्धारण हेतु इसका उपयोग होने से इसे 9 से अतिरिक्त अन्तिम अंक के रूप में स्वीकार किया है।

उपरिलिखित सभी संक्रियाओं से अभावरूप शून्य की प्राप्ति होती है तथापि यह विविध संक्रियाओं से सम्बद्ध होकर अनेक प्रकार के परिणाम उपलब्ध करा सकता है। अतः यह प्रथम प्रकार का शून्य है।

गणितीय संक्रियाओं से द्वितीय प्रकार के शून्य की उपलब्धि

सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने यह भी बताया कि शून्य से विभाजन की संक्रिया से उसका परिणाम 'अनन्त' प्राप्त होता है। इसका उन्होंने पारिभाषिक रूप से 'तच्छेद' नाम दिया। श्लोक इस प्रकार है–

खोद्धृतमृणं धनं वा तच्छेदम्। (ब्रा.स्फु.सि. 18.35)

कोई धन संख्या या ऋण संख्या ख अर्थात् शून्य से विभक्त हो तो उसका परिणाम तच्छेद या अनन्त प्राप्त होता है।

इसका अनुसरण करते हुए भास्कराचार्य ने अलग–अलग शब्दों में यही तथ्य प्रकट किया है–

खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः।

(भास्करीय बीज गणित, श्लोक 3)

खभाजितो राशि खहरः स्यात्।

(लीलावती, शून्य परिकर्म श्लोक 1)

अर्थात् ख या शून्य से विभाजित राशि खहर या अनन्त या परममहान् होती है। इस प्रकार यहाँ अनन्त को खहर यह अन्वर्थ पारिभाषिक नाम दिया है।

लीलावती के टीकाकार रंगनाथ आदि ने इसकी उत्पत्ति यह बताई है कि किसी भी संख्या को अल्प, अल्पतर, अल्पतम से भाग देने पर उसका भागफल क्रमशः महत्, महत्तम होता है। अतः 'परमाल्प' माने जाने वाले शून्य से भाग का परिणाम अवश्य ही परममहान् होगा, जो कि अनन्त है[1]।

यह स्थिति बहुत विचित्र है। 1 से नीचे उत्तरोत्तर दशमलव संख्याओं के द्वारा हम शून्य के समीप, समीपतर पहुँचते हैं। यह संख्या शून्य के जितना समीप होती है, उससे विभाजित राशि का भागफल उतना ही अधिक होता है। जैसे–

$$\frac{5}{.5} = 10, \frac{5}{0.1} = 50, \frac{5}{0.01} = 500, \frac{5}{0.001} = 5000$$

यह प्रक्रिया कभी रुकती नहीं। अतः निश्चय ही परमाल्प से विभाजित करने का परिणाम परममहान् या अनन्त होगा।

इस सम्पूर्ण परिस्थिति को ध्यान में रखकर भास्कराचार्य ने शून्य से विभाजित संख्या को पारिभाषिक अन्वर्थ 'खहर' नाम दिया है तथा इसे अन्यत्र 'अनन्त' के रूप में निरूपित किया है। यहाँ निश्चय ही 'ख' का अर्थ अभावरूप शून्य नहीं, अपितु 'परमाल्प संख्या' है। किसी संख्या से पूर्व दशमलव बिन्दु के बीच शून्यों के बढ़ाने की कोई सीमा नहीं हो सकती। इस प्रक्रिया में हम 'अनन्त परमाल्प' को प्राप्त करते हैं। यह धनात्मक या भाव संख्या है। इससे विभाजित करने पर पूर्वोक्त प्रक्रिया से 'अनन्त परममहान्' को प्राप्त करते हैं।

भास्कराचार्य भली भाँति जानते थे कि अभावरूप शून्य से विभाजित करना परिभाष्य नहीं है। अतः उन्होंने से संक्रिया का वह परिणाम नहीं बताया जिसे महावीराचार्य आदि ने माना था। उन्होंने जो भी परिणाम बताया है, वह परमाल्प अर्थ वाले 'ख' के प्रति सुसंगत है। अतः आधुनिक गणित की भाषा में उनका आशय यह है कि धनात्मक मूल्य वाली शून्य की ओर अग्रसर परमाल्प संख्या से किसी राशि को विभाजित करने पर उसका परिणाम परममहान् या अनन्त होता है। इस स्थिति में 5 को 0 से विभाजित करने का आशय आधुनिक संकेत में इस प्रकार होगा–

इस अनन्त की विशेषता को उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया है–

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत।।

(भास्करीय बीज–गणित, श्लोक 4)

अर्थात् इस खहर या अनन्त संख्या में चाहे कोई भी संख्या प्रविष्ट या निःसृत हो, इसमें कोई विकार नहीं होता। जिस प्रकार प्रलय काल में अनन्त परमेश्वर में पदार्थों के विलीन होने पर अथवा सृष्टि काल में उससे पदार्थों के उद्भूत होने पर उस अच्युत या अनन्त में कोई विकार नहीं आता। गणितशास्त्र में भी इस अनन्त मेंर किसी भी संख्या के जोड़ने या घटाने पर वह संख्या पूर्ववत् अनन्त बनी रहती है।

इसके साथ ही उन्होंने 'परमाल्प' के साथ इस गणितीय संक्रिया का भी उल्लेख किया है–

शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः।

अविकृत एव ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च युतः।।

(लीलावती, शून्यपरिकर्म, श्लोक 2)

अर्थात् यदि किसी राशि को शून्य से गुणा तथा उसी से विभाजित किया जावे तो वह राशि उसी प्रकार अविकृत या अपरिवर्तित बनी रहती है। जैसे किसी राशि में शून्य को जोड़ने या उसमें से शून्य को घटाने पर होता है।

इसके लिये उनके द्वारा प्रस्तुत उदाहरण को सरल करने पर इस प्रकार लिखते हैं[1]–

$$\frac{9x \times 0}{2 \times 0} = 63 \quad \Rightarrow x = 14$$

उनके आशय को अद्यतन संकेत लिपि मेंर इस प्रकार प्रकट करते हैं–

$$\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \frac{9x}{2} \times \frac{h}{h} = 63 \quad \Rightarrow x = 14$$

परमाल्प के साथ ये दोनों गणितीय संक्रियाएँ सर्वथा समुचित हैं। ऊपर देखा गया कि किसी राशि को अल्पतर, अल्पतम से विभाजित करने पर उसका परिणाम वर्धमान क्रम में अधिकतर, अधिकतम होता है। साथ ही यह भी सच है कि अल्पतर या महत्तर किसी भी क्रम की ओर अग्रसर संख्या को उसी अल्पतर या महत्तर से विभाजित करने पर उसका परिणाम सदा 1 होता है। इससे किसी भी राशि को गुणित करने पर उस राशि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः प्रस्तुत संक्रिया से वह राशि अपरिवर्तित रूप से 63 बनी रहती है।

इस अध्याय में ऊपर उल्लिखित बृहदारण्यक उपनिषद् 5.1.1 के मन्त्र में इसी अनन्त या पूर्ण का निरूपण है। उस अनन्त में किसी के भी योग या व्यवकलन से वह अविकृत या पूर्ण बना रहता है। वास्तव में वेदान्त सिद्धान्त की यह बहुत सुन्दर गणितीय व्याख्या है। उस अनन्त के सामने सागर की बूँदें या बालू के कणों को प्रकट करने वाली विशाल संख्याएँ सर्वथा तुच्छ हैं। वस्तुतः उस अनन्त के साथ अपादान, अधिकरण आदि कारकों का प्रयोग सर्वथा निरर्थक है। हम केवल अपने दैनिक अभ्यास वश ऐसा प्रयोग करते हैं।

यह बहुत सुखद एवं आनन्द का विषय है कि भारतीय मनीषा ने वेदान्त से गणित शास्त्र को तथा गणित से वेदान्त सिद्धान्त को सम्पुष्ट किया है।

संख्या–शब्दों के विकास का दाशमिक आधार

वेदों में संख्या–शब्दों का क्रम तथा उनकी व्युत्पत्तियों से विदित होता है कि ये शब्द मूलतः दाशमिक आधार पर अनेक पद्धतियों द्वारा विकसित किये गए हैं। इन पद्धतियों का क्रमशः निरूपण इस प्रकार है–

1. दशगुणोत्तर पद्धति

यजुर्वेद 17.2 के पूर्वोल्लिखित मन्त्र में दश, शत, सहस्त्र आदि सभी अगली संख्याएँ पिछली संख्याओं के सापेक्ष दशगुणित मान को प्रकट करती हैं। महर्षि यास्क की व्युत्पत्ति से प्रकट है कि ये शब्द इसी अवधारणा से परिचालित हैं। एक निर्वचन इस प्रकार है–

शतं दश दशतः–निरुक्त 3.10

अर्थात् दस गुणित दस के कारण शत नाम है। इस प्रकार 10 **X** 10 **=** 100 यह संक्रिया यहाँ सन्निहित है।

2. दशैकादिगुणोत्तर पद्धति

पाणिनि ने विंशति, त्रिंशत् आदि का क्रमशः उल्लेख किया है। वेद में भी इनका अलग–अलग उल्लेख है। ये संख्याएँ 10 का 2, 3 आदि के साथ क्रमशः गुणनफल के द्वारा विकसित है। निरुक्तकार के निर्वचन से यह प्रकट है–

विंशतिर्द्विर्दशतः–निरुक्त 3.10

अर्थात् 10 का 2 बार गुणित होने से विंशति नाम है। अतः इस शब्द में 10 x 2 = 20 संक्रिया अन्तर्निहित है। आगे के शब्दों के लिये भी व्याख्याकारों ने समकक्ष व्युत्पत्तियाँ दी हैं[1]।

3. दशैकादि–गुणयोगोत्तर पद्धति

इसके उदाहरण एकविंशति, त्रयोविंशति आदि हैं। ये शब्द दस का एक आदि के साथ गुणनफल का एक आदि के साथ योग से विकसित हैं। व्याकरण में द्वन्द्व समास द्वारा इन्हें अनुशासित करते हुए इन संक्रियाओं का संकेत दिया है। इस प्रकार पंचविंशति में 5 + (10 x 2) संक्रिया अन्तर्निहित है। इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए वेद में शतैकादि–गुणयोगोत्तर पद्धति के अनुसार 720 के लिये 'सप्त शतानि विंशतिः' जैसे प्रयोग भी प्राप्त हैं[2]।

संख्याओं के इस वैज्ञानिक क्रम में गणित–शास्त्र के क्रमचय (permutation) तथा आवर्तन (repetition) के बढ़िया उदाहरण प्राप्त होते हैं। आगे चलकर भारतीय गणितर में 'अंक पाश' के अन्तर्गत इनका बहुत विकास किया गया।

4. दशैकादियोगोत्तर पद्धति

यजुर्वेद के एक मन्त्र में एकादश, त्रयोदश आदि विषम संख्याओं का क्रमशः उल्लेख प्राप्त है[1]। ये सभी 10 के 1 आदि के साथ योग से निर्मित हुई हैं।

तृतीय चतुर्थ उपभेद केर द्विविध प्रकार

वेद में 'योग का क्रम–विनिमेय गुण' (Commutative law of addition) नामक गणितीय नियम के अनुसार तृतीय उपभेद की संख्याओं के लिये दो प्रकार के सम्बोधन प्रदान किये हैं–

(क) एकादिपूर्व दशाद्युत्तर

इसके उदाहरण पूर्वोल्लिखित मन्त्र में एकादश, त्रयोदश आदि हैं। संस्कृत की संख्या–माला प्रायः इस पद्धति का अनुसरण करते हुए निर्मित है। इंग्लिश में भी fifteen, sixteen आदि में इस पद्धति के चिन्ह देखे जा सकते हैं।

इनमें भी नवपूर्व संख्याओं के लिये पुनः दो प्रकार के प्रयोग विकसित हुए। प्रथम के लिये वेद में नवविंशति, नवाशीति, नवनवति आदि उदाहरण प्राप्त हैं। इसका अनुसरण करते हुए हिन्दी में नवासी, निन्यानवे जैसे प्रयोग प्रचलित हुए हैं।

दूसरे प्रकार के प्रयोग 'ऊन' शब्द के द्वारा विकसित किये गए हैं। वेद में पूर्ण के विपरीत न्यून अर्थ में ऊन का प्रयोग प्राप्त है[2]। इसके आधार पर 'एकोनविंशति' जैसे प्रयोग भी वेद में वर्तमान हैं। इसका अनुसरण करते हुए हिन्दी में उन्नीस, उनतीस आदि शब्द विकसित हैं।

आगे चलकर पाणिनि ने 'एकान्नविंशतिः' प्रयोग की भी सूचना दी है। इसका आसान विग्रह 'एकात् न विंशतिः' अर्थात् एक के कारण बीस नहीं यह हो सकता है। इस स्थिति में इसमें 20 − 1 = 19 यह व्यवकलन की संक्रिया अन्तर्निहित है। यहाँ व्याकरण में नियम है कि इस प्रकार प्रसज्य प्रतिषेध से निर्मित एक शब्द समस्त होकर संज्ञावाचक नहीं बन सकता। इस व्याकरणिक विवशता केर कारण पाणिनि ने इस शब्द को अदुक् आगम द्वारा अनुशासित किया है[1]।

(ख) दशादि पूर्व एकाद्युत्तर

इस विधा को प्रकट करने के लिये वेद का एक मन्त्रांश इस प्रकार है–

जघान नवतीर्नव–ऋग्वेद 1.184.13

यहाँ दशनवगुणित संख्या को पहले तथा नव का बाद में प्रयोग किया गया है। इग्लिश की संख्या–माला में प्रायः इस विधा का अनुसरण करते हुए **twenty one** आदि संख्याएँ विकसित हैं।

इस विवरण से प्रकट है कि भारतीय संख्या–माला का क्रम, उनका नाम तथा व्युत्पत्तियाँ अत्यन्त वैज्ञानिक हैं।

बोध प्रश्न : -

1. वेदों के अनुसार अनुपलब्ध वस्तुओं को चाहने वाले को क्या कहते हैं।
   क. चिन्तक ख. शून्यैषी ग. जैनी घ. वैदिक
2. समस्त अंकों की उत्पत्ति किससे हुई है।
   क. आकाश से ख. पृथ्वी से ग. ० से घ. उपर्युक्त सभी
3. पूर्णमिद: पूर्णमिदं ..... 0 श्लोक किसका है।
   क. वृहदारण्यकोपनिषद ख. इशोपनिषद ग. केनोपनिषद घ. कठोपनिषद

4. निम्न में आकाश का अर्थ है -

क. शून्य ख. अनन्त ग. असीमित घ. सभी

5. सहस्र का अर्थ होता है।

क. हजार ख. लाख ग. करोड़ घ. अरब

6. अर्बुद का शाब्दिक अर्थ होता है-

क. अरब ख. खरब ग. करोड़ घ.हजार

६.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में अंग्रेजी अंकों का प्रचलन इतने तीव्र वेग से बढ़ा है कि प्राचीन भारतीय अंकों का धीरे-धीरे प्रयोग कम से कम होने लगा है। आजकल इन अंग्रेजी अंकों को कुछ लोग भ्रमवश 'रोमन अंक' नाम से भी अभिहित कर रहे हैं। किसी भी गणितीय प्रक्रिया और गणितीय चिन्ह को सर्वथा विस्मृत होने और लुप्त होने में दो सौ से तीन सौ वर्ष लगते हैं। अतः यदि अंग्रेजी अंकों के प्रसार और प्रयोग की यही गति और स्थिति बनी रही तो भारतीय अंकों के विलुप्त होने का खतरा उभर पड़ेगा। व्यवहार में ऐसा इसलिए हो रहा है; क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण ज्यादातर लोग उन्हीं अंकों को जानते हैं जिन्हें वे कान्वेन्टों या स्कूलों में सीखते हैं। आज बैंकों, वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों तथा छापखाने एवं आफसेट मशीन के प्रयोगों में अंग्रेजी अंकों की उपलब्धता आसान है। यहाँ तक की पादटिप्पणियों एवं वेदमंत्रों की संख्या लिखते समय भी अंग्रेजी अंकों का ही प्रयोग किया जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। अंग्रेजी अंकों को रोमन अंक भी कहना न्यायसंगत नहीं है; क्योंकि पाँचवी शताब्दी में रोम पराजित हो कर कंस्तुताइन राजा के कार्यकाल में अपना प्राचीन स्वरूप बोध विस्मृत कर चुका है। पाँचवी शताब्दी से पूर्व का रोम और उसके बाद के रोम में सभ्यतागत अनेक बदलाव आ चुके हैं। शून्य समस्त अंकों की उत्पत्ति का मूल है।

वेद में शून्य का प्रयोग उपलब्ध है। वहाँ किसी अनुपलब्ध वस्तु को चाहने वाले के लिये 'शून्यैषी' का प्रयोग किया गया है।

६.६ पारिभाषिक शब्दावली

शून्य – ० को कहते है। समस्त अंकों की उत्पत्ति इसी से हुई है।

शून्यैषी - अनुपलब्ध वस्तु को चाहने वाले को शून्यैषी कहते है।

अंक – ०,१,२,३ ..... आदि को अंक कहते है।

शतकम् – जो चलता नहीं अर्थात् स्थिर

सहस्र – हजार

लक्ष – लाख

अर्बुद – अरब

खर्बुद – खरब

६.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
1. ग
2. क
3. घ
4. क
5. क

६.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र – डॉ. कामेश्वर उपाध्याय
2. गणित शास्त्र की भारतीय परम्परा -
3. ग्रहगति का क्रमिक विकास – पं. रामजन्म मिश्र
4. वैदिक गणित

६.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. ज्योतिष शास्त्र – डॉ. कामेश्वर उपाध्याय
2. गणित शास्त्र की भारतीय परम्परा -
3. ग्रहगति का क्रमिक विकास – पं. रामजन्म मिश्र
4. वैदिक गणित
5. जैन दर्शन

६.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. शून्य से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. वेदों एवं साहित्यों में प्रतिपादित शून्य का वर्णन कीजिये।
3. शून्य की महत्ता प्रतिपादित कीजिये।
4. अंको की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये।
5. शून्य एवं दार्शनिक प्रणाली का प्रतिपादन कीजिये।

खण्ड - 2
अष्टक वर्ग विवेचन

इकाई - 1 अष्टकवर्ग की अवधारणा

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना

१.२ उद्देश्य

१.३ अष्टकवर्ग परिचय

१.४ अष्टक वर्ग की अवधारणा

१.५ सारांश

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-608 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – अष्टक वर्ग की अवधारणा। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने सिद्धान्त ज्योतिष के कई सिद्धान्तों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ज्योतिष के प्रमुख गणितीय अवयव अष्टक वर्ग से अवगत होने जा रहे है।

सूर्यादि समस्त ग्रहों का अष्टक वर्ग साधन बतलाया गया है। ग्रहों के अष्टक वर्ग क्या है। उसका गणितीय साधन कैसे किया जाता है। उसका फलित पक्ष क्या है। उपयुक्त सभी विषय आपको इस इकाई में मिलेंगे।

अत: आइए इस इकाई में हम सभी अष्टक वर्ग की अवधारणा से सम्बन्धित गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

१.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- अष्टक वर्ग की परिभाषा क्या है।
- अष्टक वर्ग का साधन कैसे किया जाता है।
- अष्टक वर्ग की अवधारणा क्या है।
- अष्टक वर्ग का फलित पक्ष कैसा है।
- सूर्यादिक समस्त ग्रहों के अष्टक वर्ग से परिचित हो जायेंगे।

१.३ अष्टकवर्ग परिचय

जन्माङ्ग चक्र व्यक्ति के जन्मकालिक गगनमण्डल का ऐसा मानचित्र होता है जो तत्कालीन ग्रहस्थिति को दर्शाता है। व्यक्ति निरन्तर परिवर्तनशील ग्रहस्थिति, जिसे गोचर कहते हैं, से भी प्रभावित होता है। इष्ट समय में ग्रहस्थिति को दर्शाने वाला गगनमण्डल का मानचित्र गोचरचक्र या गोचरकुण्डली के नाम से जाना जाता है। जन्माङ्ग में कोई ग्रह यदि शुभद स्थिति में हो और गोचरकुण्डली में भी सुखद स्थिति में हो तो उस ग्रह का पूर्ण शुभ फल जातक को प्राप्त होता है।

किन्तु यदि उक्त ग्रह गोचरकुण्डली में शुभद स्थिति में नहीं है तो उस ग्रह के फल में न्यूनता आती है या नेष्ट फल को स्पष्टता से जानने के लिए **अष्टकवर्ग** का निरूपण पूर्वाचार्यों द्वारा किया गया है।

ग्रह अपनी गति से अविराम चलते हुए द्वादश राशियों को संयमित करते हैं। जन्म के समय जिन राशियों में वे स्थित होते हैं उसके आगे चलते हुए कुछ राशियों में वे शुभ फल और कुछ राशियों में नेष्ट फल देते है। जिन राशियों में वे शुभ फल देते हैं उसे बिन्दु (०) के द्वारा और जिनमें नेष्ट फल देते हैं उसे रेखा (।) के द्वारा चिन्हित करने की प्रथा है। पराशरादि कतिपय आचार्यों ने इसके विपरीत शुभप्रद राशि में रेखा में (।) और पापफलद राशियों में बिन्दु (०) चिन्ह अंकित करने का निर्देश किया है। जातकपारिजात ग्रन्थ में शुभ स्थान में बिन्दु (०) और अशुभ स्थान में रेखा (।) चिह्न लगाने का निर्देश आचार्य ने किया है। जैसे सूर्य अपनी राशि में अपनी राशि से दूसरी, चौथी, सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं राशि में शुभ फल देता है। अतः इन राशियों में रेखा (।) चिन्ह लगाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के शुभाशुभ फलानुसार बिन्दु और रेखा लगाने से अष्टकवर्ग चक्र तैयार होता है।

अब यहाँ सूर्यादि सप्त ग्रह और लग्न इन आठों के वर्ग का विचार करने के कारण ही फलादेश की इस पद्धति को **'अष्टकवर्ग'** कहते हैं।

सर्वप्रथम लघुजातक में वराहमिहिराचार्य द्वारा उल्लिखित ग्रहों के अष्टकवर्ग को हम यहाँ समझते है -

सूर्याष्टक वर्ग –

केन्द्रायाष्टद्विनवस्वर्क: स्वादार्किभौमतश्च शुभ:।
षट्सप्तान्त्येषु सितात् षडायधीधर्मगो जीवात्।।
उपचयगोऽर्कश्चन्द्रादुपचयनवमान्त्यधीगत: सौम्यात्।
लग्नादुपचयबन्धुव्ययस्थित: शोभन: प्रोक्त:।।

अर्थात् सूर्य, अपने स्थान एवं शनि और मंगल से १। ४।७।१०।११।८।२।९ इन स्थानों में शुभ होता है। रवि शुक्र से ६।७।१२ स्थानों में शुभ, गुरु से ६।११।५।९ स्थानों में शुभ, चन्द्रमा से उपचय ३।६।११।१० स्थानों में शुभ, बुध से ३।६।११।१०।९।१२।५ स्थानों में शुभ तथा लग्न से ३।६।११।१०।४।१२ स्थानों में शुभ होता है।

चन्द्राष्टक वर्ग –

शश्युपचयेषु लग्नात्साद्यमुनि: स्वात्कुजात्स्वनवधीषु।
सूर्यात् साष्टस्मरगस्त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात्।।

ज्ञात केन्द्रत्रिसुतायाष्टगो गुरोर्व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु।
त्रिचतु: सुतनवदशमद्युनायगश्चन्द्रमा: शुक्रात्।।

अर्थात् लग्न से ३।६।११।१० स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है। चन्द्रमा अपने स्थान से ३।६।११।१०।१।७ स्थानों में शुभ, भौम से ३।६।११।१०।२।९।५ स्थानों में शुभ, सूर्य से ३।६।११।१०।८।७ स्थानों में शुभ, शनि से ३।६।११।५ इन स्थानों में शुभ, बुध से १।४।७।१०।३।५।११।८ स्थानों में शुभ, वृहस्पति से १२।११।८।१।४।७।१० स्थानों में एवं शुक्र से ३।४।५।९।१०।७।११ स्थानों में शुभ होता है।

भौमाष्टक वर्ग –

भौम: स्वादायस्वाष्टकेन्द्रगस्त्रयायषट्सुतेषु बुधात्।
जीवाद् दशाय शत्रु व्ययेष्विनादुपचय सुतेषु।।
उदयादुपचयतुनुषु त्रिषडायेष्विन्दुत: समो दशम:।
भृगुतोऽन्त्यषडष्टायेष्वसितात् केन्द्रायनववसुषु।।

भौम अपने स्थान से ११।२।८।१।४।७।१० स्थानों में शुभ, बुध से ३।११।६।५ स्थानों में शुभ, वृहस्पति से १०।११।६।१२ स्थानों में शुभ, सूर्य से ३।६।११।१०।५ स्थानों में शुभ, लग्न से ३।६।११।१०।१ स्थानों में शुभ और चन्द्रमा से ३।६।११ स्थानों में रहने पर शुभ होता है। चन्द्रमा से भौम दशम स्थान में हो तो सम होता है। शुक्र से १२।६।८।११ स्थानों में शुभ और शनि से १।४।७।१०।११।९।८ स्थानों में भौम स्थित रहने पर शुभ होता है।

बुधाष्टक वर्ग –

सौम्योऽन्त्यषण्णवायात्मजेष्विनात् स्वात् त्रितदुदशयुतेषु।
चन्द्रादद्विरिपुदशायाष्टसुखगत: स्वात् सादिषु विलग्नात्।।
प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु सितात् त्रिधीसमेतेषु।
साशास्मरेषु सौरारयोर्व्ययायरिपुवसुषु गुरो:।।

श्लोकार्थ है कि रवि से १२।६।९।११।५ स्थानों में बुध शुभ होता है। बुध अपने स्थान से १२।६।९।११।५।३।१।१० स्थानों में शुभ, चन्द्रमा से २।६।१०।११।८।४ स्थानों में शुभ, लग्न से २।६।१०।१।८।४।१ स्थानों में शुभ, शुक्र से १।४।११।२।८।९।३।५ स्थानों में शुभ, शनि एवं भौम से १।४।११।२।८।९।३।५।१०।७ स्थानों में शुभ, तथा गुरु से १२।१।६।८ स्थानों में स्थित रहने पर शुभ होता है।

गुर्वष्टक वर्ग –

जीवो भौमाद् द्वयायाष्टकेन्द्रगोऽर्कात् सधर्मसहजेषु।
स्वात् सत्रिकेषु शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु।।
शशिनः स्वरत्रिकोणार्थलाभगस्त्रिरिपुधीव्ययेयु यमात्।
नवदिक्सुखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात् सकामगो लग्नात्।।

भौम से २।१।८।१।४।७।१० स्थानों में वृहस्पति स्थित रहने पर शुभ होता है। सूर्य से २।१।८।१।४।७।१०।९।३ स्थानों में, गुरु अपने स्थान से २।१।८।१।४।७।१०।३ स्थानों में, शुक्र से ९।१०।११।२।५।६ स्थानों में , चन्द्रमा से ७।९।५।२।११ स्थानों में, शनि से ३।५।६।१२ स्थानों में, बुध से ९।१०।४।१।५।२।११।६ स्थानों में तथा लग्न से ९।१०।४।१।५।२।११।६।७ स्थानों में स्थित रहने पर वृहस्पति शुभ होता है।

शुक्राष्टक वर्ग –

शुक्रो लग्नादासुतनवाष्टलाभेषु सव्वयश्चन्द्रात्।
स्वात् सदिगसितात् त्रिसुखात्मजाष्टदिग्धर्मलाभेषु।।
वस्वन्त्यायेष्वर्कान्नवदिग्लाभाष्टधीस्थितो जीवात्।
ज्ञात् त्रिसुतनवायारिष्वायसुतापोक्लिमेषु कुजात्।।

लग्न से १।२।३।४।५।९।८।११ स्थानों में स्थित शुक्र शुभ होता है। चन्द्रमा से १।२।३।४।५।९।।११।१२ स्थानों में, शुक्र अपने स्थान से १।२।३।४।५।९।८।११।० स्थानों में, शनि से ३।४।५।८।१०।९।११ स्थानों में, सूर्य से ८।१२।११ स्थानों में, वृहस्पति से ९।१०।११।८।५ स्थानों में, बुध से ३।५।९।११।६ स्थानों में तथा भौम से ११।५।३।६।९।१२ स्थानों में स्थित शुक्र शुभ होता है।

शन्यष्टकवर्ग –

स्वात् सौरिस्त्रिसुतायारिगः कुजादन्त्यकर्मसहितेषु।
स्वायाष्टकेन्द्रगोऽर्काच्छुक्रात् षष्ठान्त्यलाभेषु।।
त्रिषडायगः शशांकादुदयात् ससुखाद्यकर्मगोऽथ गुरोः।
सुतषट्व्ययायगो ज्ञात् व्ययारिपुदिंगनवाष्टस्थः।।

शनि अपने स्थान से ३।५।११।६ स्थानों में शुभ होता है। भौम ३।५।११।६।१२।१० स्थानों में, रवि २।११।८।१।४।७।१० स्थानों में, शुक्र ६।१२।११ स्थानों में, चन्द्रमा ३।६।११ स्थानों में, लग्न ३।६।१।४।१।१० स्थानों में, वृहस्पति ५।६।१२।१ स्थानों में तथा बुध १२।११।६।१०।९।८ स्थानों में स्थित शनि शुभ होता है।

अष्टक वर्ग फल –

स्थानेष्वेतेषु शुभाः शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम्।
अशुभशुभविशेषफलं ग्रहाः प्रयच्छन्ति चारगताः।।

अर्थात् पूर्व में बतलाये गये स्थानों में स्थित ग्रह शुभ और शेष स्थानों में ग्रह अशुभ होते हैं। इस प्रकार आठों स्थानों से शुभ और अशुभ को चिह्नित कर जिस स्थान में अशुभ ग्रह अधिक हों, उस स्थान में चारवश ग्रह जाते हैं, तो अशुभ फल एवं जिस स्थान में शुभ ग्रह अधिक हों उस स्थान में चारवश ग्रह जाते हैं,तो शुभ फल प्रदान करते हैं।

वृहत्पराशरहोराशास्त्र ग्रन्थ के अनुसार अष्टक वर्ग विचार -

जिस प्रकार लग्न तथा चन्द्रमा से ग्रहों के द्वादश भावस्थ ग्रहों का शुभाशुभ फल कहा गया है, उसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी लग्नादि द्वादश भावों के शुभाशुभ फल होते हैं। इसीलिए सूर्यादि ७ ग्रह तथा लग्न- इन आठों के क्रम से करणसंज्ञक अशुभ स्थान को बिन्दु से तथा स्थानसंज्ञक शुभ भाव को रेखा से उपलक्षित कर निम्नानुसार फल बताना चाहिए।

सूर्य के करण (अशुभ स्थान)

तनुस्वायुस्त्रिरिष्फेषु पंच कामे सुखोऽर्णवाः।
अरौ भाग्ये त्रयः पुत्रे षट् करौ खे भवे च भूः।।

सूर्य से 1, 2, 8, 3, 12 भावों में पाँच ग्रह करणकारक होते हैं। इसी प्रकार 7, 4 भाव में 4 ग्रह, 6, 9 भाव में 3 ग्रह, 5 भाव में 6 ग्रह, 10 में 2 ग्रह और 11 भाव में 1 ग्रह करण-(बिन्दु)-प्रद होते हैं।

और स्पष्ट रूप से कहते हैं -

लग्नेदु-जीव-शुक्र-ज्ञास्तनौ स्वे मरणेऽपि च।

रवि-भौमार्कि-चन्द्रार्या व्यये ज्ञेन्दुसितार्यकाः।।
सुखे होरेन्दुशुक्राश्च धर्मेऽर्कार्किकुजा अरौ।
होराज्ञार्येन्दवः कामे भवे दैत्येन्द्रपूजितः।।
सहजेऽर्कार्किशुक्रार्यभौमाः खे गुरु-भार्गवौ।
सुतेऽर्कार्कीनदु-लग्नार-शुक्राः स्युः करणं रवेः।।

सूर्य के 1, 2, 8 भावों में लग्न, चन्द्र, गुरु, शुक्र और बुध-ये 5 ग्रह तथा द्वादश भाव में सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्र और गुरु-ये 5 ग्रह, चतुर्थ भाव में बुध, चन्द्र, शुक्र और गुरु-ये 4 ग्रह, नवम स्थान

में लग्न, चन्द्र और शुक्र-ये 3 ग्रह, षष्ठ भाव में रवि, शनि और मंगल-ये 3 ग्रह, सप्तम में लग्न, बुध, गुरु और चन्द्र-ये 4 ग्रह, एकादश में केवल शुक्र, तृतीय स्थान में सूर्य, शनि, शुक्र, गुरु और मंगल-ये 5 ग्रह, दशम स्थान में गुरु और शुक्र 2 ग्रह एवं पंचम भाव में सूर्य, शनि, चन्द्र, लग्न, मंगल और शुक्र-ये 6 ग्रह करण-(बिन्दु)-कारक होते हैं।

उदाहरण-अष्टक वर्ग में शुभाशुभ का ज्ञान करने हेतु 14 तिर्यक् रेखा एवं 10 खड़ी रेखा करने पर 117 कोष्ठ वाला चक्र बनेगा। ऊपर तिर्यक् कोष्ठ में सूर्यादि 7 ग्रहों को लग्न सहित अंकित करें तथा नीचे बाँयें तरफ ऊर्ध्वाधः कोष्ठ में क्रम से 1 से 12 स्थान लिखकर उक्त श्लोक के अनुसार जिस-जिस स्थान में जो-जो ग्रह करणकारक कहा गया है, उस-उस स्थान में उस ग्रह के सामने बिन्दु लिखने से पूर्वकथित करण स्पष्टतया अवगत हो जायेगा। अर्थात् जिस ग्रह के नीचे जिन भावों में बिन्दु पड़ेंगे उस ग्रह से अष्टक वर्ग वाला ग्रह अपनी गति के अनुसार जब-जब उन भावों में जायेगा तब-तब अनिष्ट फल प्राप्त होग, साथ ही शेष स्थानों में गतिवश जब जायेगा तब शुभफल देने वाला होगा।

सूर्याष्टक चक्र में शुभाशुभ स्थान बोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	बिन्दु सं.
1		0		0	0	0		0	5
2		0		0	0	0		0	5
3	0		0		0	0	0		5
4		0		0	0	0			4
5	0	0	0			0	0	0	6
6	0		0				0		3
7		0		0	0			0	4
8		0		0	0	0		0	5
9		0				0		0	3
10					0	0			2
11						0			1
12	0	0	0		0		0		5

सूर्य के अष्टक वर्ग में शुभाशुभ-ज्ञान हेतु चक्र का अवलोकर करें: जैसे सूर्य के सामने 3, 4, 6, 12 स्थानों में बिन्दु पड़े हैं, इसलिए ये 4 स्थान अशुभकारक हैं, अर्थात् जन्मकाल में सूर्य जहाँ है वहाँ से

गिनकर इन स्थानों में सूर्य जब-जब गोचर से जायेगा, तब-तब अशुभ होगा। शेष 1, 2, 4, 7, 8, 9, 10, 11 स्थान में सूर्य जब-जब गोचर से जायेगा तब तब शुभ फलकारक होगा। सूर्य के समान ही मंगल एवं शनि का भी फल होता है, अर्थात् 3, 5, 6, 12 स्थानों में अशुभ और शेष स्थानों में शुभ फलकारक होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा से सूर्य 1, 2, 4, 5, 7, 8, 9, 12 स्थानों में अशुभ एवं शेष स्थानों में शुभ होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी बिन्दुस्थान अशुभ एवं शेष स्थान शुभ जानना चाहिए।

चन्द्रमा से करणसंख्या तथा करणप्रद ग्रह

भाग्यस्वयोश्च षड् वेश्ममृतिहोरासु पंच च।
मानदुश्चिक्ययोरेकः सुते वेदा अरिस्त्रियोः।।
त्रयो व्ययेष्टावाये च शून्यं शीतकरस्य तु।
होरार्कारार्कि-भृगवोऽगांज्ञार्केन्द्वार्कि-भार्गवाः।।
जीवोऽर्कार्कीन्दुलग्नारा होरेन्दु-गुरु-भास्कराः।
सितज्ञार्याः कुजतनुमन्दास्ते सितशीतगू।।
होरार्कारार्किविज्जीवाः शनिः खं सकलाः क्रमात्।।

चन्द्रमा के 9, 2 स्थान में 6 ग्रह; 4, 8, 1 स्थान में 5 ग्रह; 10, 3 स्थान में 1 ग्रह; 5 स्थान में 4 ग्रह; 6, 3 स्थान में 3 ग्रह; 12 स्थान में 8 ग्रह एवं 11 स्थान में शून्य अर्थात् सभी ग्रह करणप्रद होते हैं। जैसे प्रथम स्थान में सूर्य, लग्न, मंगल, शनि और शुक्र-ये 5 ग्रह; 2 स्थान में गुरु, रवि, शनि, चन्द्र, लग्न और मंगल-ये 6 ग्रह; तृतीय स्थान में केवल गुरु; चतुर्थ स्थान में रवि, शनि, चन्द्र, लग्न और मंगल-ये पाँच, ग्रह; पंचम स्थान में लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य- ये 4 ग्रह; षष्ठ में शुक्र, बुध और गुरु-ये 3 ग्रह; सप्तम में मंगल, लग्न और शनि-ये 3 ग्रह; अष्टम में शुक्र, चन्द्र, लग्न, रवि, मंगल और शनि-ये 6 ग्रह; नवम स्थान में लग्न, रवि, मंगल, बुध और गुरु-ये छः ग्रह; दशम स्थान में केवल शनि, एकादश स्थान में शून्य ग्रह और द्वादश स्थान में सभी ग्रह बिन्दुप्रद होते हैं। उक्त स्थानों के अतिरिक्त स्थान रेखाप्रद होते हैं।

चन्द्रकरणप्रद चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
3	0		0			0	0	0	5
2	0	0		0		0	0	0	6
3					0				1
4	0	0	0					0	4
5	0	0			0			0	4

6				0	0	0			3
7			0				0	0	3
8		0	0			0	0	0	5
9	0		0	0	0		0	0	6
10							0		1
11									शून्य
12	0	0	0	0	0	0	0	0	8

इस प्रकार उक्त चक्र को देखने से स्पष्ट अवगत होता है कि जन्मकुण्डली में सूर्य जहाँ बैठा हो वहाँ से 1, 2, 4, 5, 9, 12 स्थानों में जब-जब चन्द्रमा जायेगा तब-तब अशुभ और इनसे भिन्न स्थानों में जब चन्द्रमा जायेगा तब शुभ फलकारक होगा। बुध जहाँ बैठा हो वहाँ से जब चन्द्रमा 1, 2, 4, 7, 8, 9, 10, 12 स्थानों में जायेगा तब अशुभ और इनसे भिन्न स्थानों में शुभ होगा। इसी प्रकार से अन्य ग्रहों से भी विचार कर शुभाशुभ फल जानना चाहिए।

भौम करणसंख्या तथा करणप्रद ग्रह

व्ययवेश्मसुतस्त्रीषु षट् सप्त धनधर्मयोः।।
होरामृत्व्वोः शरा वेदा विक्रमे खे त्रयः क्षते।
द्वौ भवे शून्यमेवं स्यात् करणं भूमिजस्य तु।
कुजस्यार्केन्दुविज्जीवासता लग्नशनी च तु।
सितारगुरुमन्दाः स्युर्धर्मोक्तेषु कुजं विना।।
चन्द्रबुधगुरुशुक्रार्किलग्नानि कुजभास्करौ।
ज्ञेन्द्वर्कसितलग्नार्या एषु शुक्रं विना ततः।।
विना शनिं सप्त धर्मे सितेन्दुज्ञा वियत्ततः।
अर्कार्किज्ञेन्दुलग्नाराः करणं प्रोच्यते क्रमात्।।

मंगल से 12, 4, 5, 6 स्थानों में 6 ग्रह; 2, 9 स्थानों में 7 ग्रह; 1, 8 स्थानों में 5 ग्रह; 3 स्थान में 4 ग्रह; दशम में 3 ग्रह; षष्ठ में 2 ग्रह और 11 स्थान में शून्य ग्रह करणप्रद होते हैं।

जैसे प्रथम स्थान में सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र-ये 5 ग्रह; द्वितीय स्थान में लग्न, शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र-ये 7 ग्रह; तृतीय म शुक्र, मंगल, गुरु और शनि-ये 4 ग्रह; चतुर्थ और नवम में कथित ग्रहों में से मंगल को छोड़कर शेष ग्रह अर्थात् रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र और लग्न-ये 6 ग्रह; पंचम म चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र, शनि और लग्न-ये 5 ग्रह; षष्ठ स्थान में मंगल और शनि-ये 2 ग्रह; सप्तम स्थान में बुध, चन्द्र, रवि, शुक्र, लग्न और गुरु-ये 6 ग्रह; अष्टम में सप्तम में कथित शुक्र को

छोड़कर शेष सभी ग्रह; नवम स्थान में शनि को छोड़कर शेष सभी ग्रह अर्थात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और लग्न-ये 7 ग्रह; दशम स्थान में शुक्र, चन्द्र और बुध-ये 3 ग्रह; एकादश में शून्य ग्रह अर्थात् एक भी नहीं एवं द्वादश स्थान में रवि, शनि, बुध, चन्द्र, लग्न और मंगल-ये 6 ग्रह करण बिन्दुकारक होते हैं।

भौमस्पष्टार्थ चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	0	0		0	0	0			5
2	0	0		0	0	0	0	0	7
3			0		0	0	0		4
4	0	0		0	0	0		0	6
5		0	0		0	0	0	0	6
6			0				0		2
7	0	0		0	0	0		0	6
8	0	0		0	0			0	5
9	0	0	0	0	0	0		0	7
10		0		0		0			3
11									शून्य
12	0	0	0	0			0	0	6

भौम स्पष्टार्थ चक्र देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्मा... चक्र में सूर्यनिष्ठ राशि से 1, 2, 4, 7, 8, 9, 12 स्थानों में गोचर से जब-जब मंगल जायेगा तब-तब अशुभ फलकारक होगा एवं इससे भिन्न स्थानों में जब-जब मंगल जायेगा तब-तब शुभ फलकारक होगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी जानना चाहिए।

बुध-करणसंख्या और ग्रह

तनुस्वगृहकर्मारिधर्मेष्वग्निर्मृतौ करौ।
भ्रातृस्त्रियो रसा लाभे शून्यं पुत्रे व्यये शराः।।
बुधस्यर्केन्दुगुरवो गुरुसूर्यबुधाः क्रमात्।
लग्नार्कारार्किचन्द्रार्या ज्ञार्कार्या हि बुधस्य तु।।
जीवारेन्द्वार्किलग्नानि शुक्रमत्रधरासुताः।
ज्ञेन्दुलग्नार्कशुक्रार्या ज्ञार्कौ जीवेन्दुलग्नकाः।।
अर्कार्यशुक्राः शून्यं च होरेन्द्वारार्किभार्गवाः।।

बुध से 1, 2, 4, 10, 6, 9 स्थानों में 3 ग्रह; 8 म 2 ग्रह; तृतीय एवं सप्तम स्थान में 6 ग्रह; एकादश में शून्य ग्रह एवं 5, 12 स्थान में 5 ग्रह करण होते हैं। जैसे- प्रथम में सूर्य, चन्द्र और गुरु-ये 3 ग्रह; द्वितीय

स्थान में गुरु, शुक्र और बुध-ये 3 ग्रह; तृतीय स्थान में लग्न, सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्र और गुरु-ये 6 ग्रह; चतुर्थ स्थान में बुध, सूर्य और गुरु-ये 3 ग्रह; पंचम में गुरु, मंगल, चन्द्र, शनि और लग्न-ये 5 ग्रह; षष्ठ में शुक्र, शनि और मंगल-ये 3 ग्रह; सप्तम में बुध, चन्द्र, लग्न, रवि, शुक्र और गुरु-ये 6 ग्रह; अष्टम में बुध एवं रवि-2 ग्रह; नवम में गुरु, चन्द्र और लग्न-ये 3 ग्रह; दशम में रवि, गुरु और शुक्र-ये 3 ग्रह; एकादश में शून्य ग्रह एवं द्वादश में लग्न, चन्द्र, मंगल, शनि और शुक्र-ये 5 ग्रह करण (बिन्दु) कारक होते हैं।

बुधस्पष्टार्थ चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	0	0			0				3
2	0			0	0				3
3	0	0	0		0		0	0	6
4	0			0	0				3
5		0	0		0		0	0	5
6			0			0	0		3
7	0	0		0	0	0		0	6
8	0			0					2
9		0			0			0	3
10	0				0	0			3
11									शून्य
12		0	0			0	0	0	5

इस बुधस्पष्टार्थ चक्र से स्पष्ट अवगत होता है कि जन्मसमय में सूर्य जिस स्थान में बैठा हो वहाँ से 1, 2, 3, 4, 7, 8, 10 स्थानों में बुध जब-जब जायेगा तब-तब अशुभकारक समय रहेगा एवं इससे भिन्न स्थानों में बुध गोचर से जब-जब जायेगा तब-तब शुभकारक समय रहेगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी जानना चाहिए।।

गुरु के करण संख्या और ग्रह

रूपं धनाययोः खे द्वौ व्यये सप्त क्षतेऽर्णवाः।।
मृतिविक्रमयोः पंच गुरोः शेषेषु वह्नयः।
लग्ने शुक्रेन्दुमन्दाः स्वे आये मन्दश्च विक्रमें।।
लग्नारेन्दुज्ञभृगवः सुतेकार्यकुजा गृहे।
शुक्रमन्देन्दवो द्यूने बुध-शुक्र-शनैश्चराः।।
जीवारार्केन्दवः शत्रौ सर्वे मन्दं विना व्यये।

कर्मणीन्दुशनी धर्मे मन्दारगुरवो मृतौ।।

लग्नार्किसितचन्द्रज्ञाः करणं च गुरोरिदम्।।

गुरु से द्वितीय एवं एकादश स्थान में 1 ग्रह, दशम में 2 ग्रह, द्वादश, में 7 ग्रह, षष्ठ स्थान में 4 ग्रह, अष्टम एवं तृतीय स्थान में 5 ग्रह तथा शेष स्थानों में 3 ग्रह करण होते हैं। जैसे गुरु से 1 स्थान में शुक्र, चन्द्र एवं शनि-ये 3 ग्रह; द्वितीय तथा आय स्थान में केवल शनि ग्रह; तृतीय स्थान में मंगल, चन्द्र, शुक्र, लग्न और बुध-ये 5 ग्रह; पंचम स्थान में सूर्य, गुरु और मंगल-ये 3 ग्रह; गृह (चतुर्थ) स्थान में शुक्र, शनि और चन्द्र-ये 3 ग्रह; सप्तम स्थान में बुध, शुक्र और शनि-ये 3 ग्रह; षष्ठ स्थान में गुरु, मंगल, सूर्य और चन्द्र-ये 4 ग्रह; द्वादश स्थान में शनि को छोड़कर शेष सभी ग्रह; दशम स्थान में चन्द्र और शनि-ये 2 ग्रह; नवम में शनि, मंगल और गुरु-ये 3 ग्रह तथा अष्टम स्थान मं लग्न, शनि, शुक्र, चन्द्र और बुध-ये 5 ग्रह करणकारक होते हैं।

स्पष्टार्थ गुरुकरणचक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
1		0				0	0		3
2							0		1
3		0	0	0		0		0	5
4		0				0	0		3
5	0		0		0				3
6	0	0	0		0				4
7				0		0	0		3
8		0		0		0	0	0	5
9			0		0		0		3
10		0					0		2
11							0		1
12	0	0	0	0	0	0		0	7

इस चक्र के अनुसार जिस ग्रह से जिस स्थान में शून्य पड़े हैं, उस स्थान में गोचर से गुरु जाने पर अशुभ और अन्य स्थान में जाने पर शुभ फलकारक होता है।।

शुक्र करण संख्या तथा ग्रह

सुतायुर्विक्रमेष्वक्षि तनुस्वव्ययखेष्विषुः।।

अष्टौ स्त्रियामरौ षड् भूर्धर्मे मित्रेऽक्षि खं भवे।

लग्ने स्वेऽर्कारविज्जीवमन्दाः सर्वे च कामभे।।

अर्कार्यौ विक्रमस्थाने सुतेऽर्कारौ शुभे रविः।

सुखेऽर्कबुधजीवाः स्युर्भौमज्ञौ मृतिभे द्विज!।।

शुक्रार्केन्द्वार्किलग्नार्याः शत्रौ शून्यं भवे व्यये।
होरार्किबुधशुक्रार्यास्तन्वारज्ञेन्द्विनाश्च खे।।

पंचम, अष्टम एवं तृतीय स्थान में 2 ग्रह; प्रथम, द्वितीय, द्वादश एवं दशम में 5 ग्रह; सप्तम में 8 ग्रह, षष्ठ में 6 ग्रह, नवम में 1 ग्रह, चतुर्थ स्थान में 3 ग्रह एवं एकादश में शून्य ग्रह करण-(बिन्दु)-कारक होते हैं। जैसे शुक्र से 1, 2 भाव में सूर्य, मंगल, बुध, गुरु और शनि-ये 5 ग्रह; सप्तम में समस्त ग्रह; तृतीय में सूर्य और गुरु-ये 2 ग्रह; पंचम में रवि और मंगल-ये 2 ग्रह; नवम में केवल सूर्य ग्रह; चतुर्थ में सूर्य, बुध और गुरु-ये 3 ग्रह; अष्टम स्थान में मंगल और बुध-ये 2 ग्रह; षष्ठ भाव में शुक्र, रवि, चन्द्र, शनि, लग्न और गुरु-ये 6 ग्रह; एकादश स्थान में शून्य ग्रह; द्वादश स्थान में लग्न, शनि, बुध, शुक्र और गुरु-ये 5 ग्रह तथा दशम स्थान में लग्न, मंगल, बुध, चन्द्र और सूर्य-ये 5 ग्रह करण-(बिन्दु)-कारक होते हैं।

शुक्र -करण बोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	0		0	0	0		0		5
2	0		0	0	0		0		5
3	0				0				2
4	0			0	0				3
5	0		0						2
6	0	0			0	0	0	0	6
7	0	0	0	0	0	0	0	0	8
8				0					2
9	0		0						1
10	0	0	0	0				0	5
11									शून्य
12				0	0	0	0	0	5

इस चक्र से यह जानना चाहिए कि बिन्दुयत स्थान अशुभ और बिन्दुरहित स्थान शुभ होते हैं। ग्रह अपने गतिवश सभी स्थानों में भ्रमण करते हैं।

शनि-करणसंख्या और ग्रह

स्वस्त्रीधर्मेषु सप्ताऽङ्गं मृतिहोरागृहेषु च।
अज्ञाभ्रातृव्यये वेदा रूपं शत्रौ सुते शराः।।

आये शून्यं शनेरेवं करणं प्रोच्यते बुधैः।
गृहे तनौ च लग्नार्कौ स्वस्त्रियोश्च रविं विना।।
हित्वा धर्मे बुधं माने लग्नाररविचन्द्रजान्।
ततो भ्रातरि जीवार्कबुधशुक्राः क्षते रविः।।
व्यये लग्नेदुमन्दार्काः सितार्केन्दुज्ञलग्नकाः।
सुते मृतौ बुधार्कौ च हित्वाऽऽये खं शनेर्विदः।।

शनि से द्वितीय, सप्तम एवं नवम में 7 ग्रह; अष्टम, लग्न एवं चतुर्थ स्थान में 6 ग्रह; दशम, तृतीय एवं द्वादश में 4 ग्रह; षष्ठ में 1 ग्रह; पंचम में 5 ग्रह एवं एकादश में शून्य ग्रह-इस प्रकार शनि के करण (बिन्दु) हैं। जैसे शनि से 4, 1 स्थान में रवि को छोड़ कर शेष सभी ग्रह; नवम में बुध को छोड़कर शेष सभी ग्रह; दशम में लग्न, मंगल, रवि और बुध-ये 4 ग्रह, तृतीय में गुरु, रवि, बुध और शुक्र-ये 4 ग्रह; षष्ठ स्थान में केवल रवि; द्वादश में लग्न, चन्द्र, शनि और रवि-ये 4 ग्रह; पंचम में शुक्र, रवि, चन्द्र, बुध और लग्न-ये 5 ग्रह; अष्टम में बुध और रवि को छोड़करर शेष सभी ग्रह करण होते हैं तथा एकादश
में शून्य ग्रह करणप्रद होते हैं।

शनि स्पष्टार्थबोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
1		0	0	0	0	0	0		6
2		0	0	0	0	0	0	0	7
3	0			0	0	0			4
4		0	0	0	0	0	0		6
5	0	0		0		0		0	5
6	0								1
7		0	0	0	0	0	0	0	7
8		0	0		0	0	0	0	6
9	0	0	0		0	0	0	0	7
10		0			0	0	0		4
11									शून्य
12	0	0					0	0	**4**

इस चक्र से बिन्दुयुत स्थान अशुभ एवं बिन्दुरहित स्थान शुभ होते हैं।

इस प्रकार ग्रन्थकर्ता ने 'उक्तान्ये स्थानदातारः' कहकर बिन्दुप्रद स्थान से भिन्न स्थान रेखाप्रद शुभ स्थल को सूचित कर दिया है।

अब यहाँ सामान्य बुद्धि वालों की सुगमता के लिए रेखाप्रद स्थानों को भी कह रहे हैं।

सूर्य के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

उक्ताऽन्यो स्थानदातार इति स्थानं विदुर्बुधाः।
अथ स्थानग्रहान् वक्ष्ये सुखबोधय सूरिणाम्।।
स्वायुस्तनुषु मन्दारसूर्या जीवबुधौ सुते।
विक्रमे ज्ञेन्दुलग्नानि लग्नार्कार्किकुजा गृहे।।
ते च ज्ञेन्दू खभे चाऽऽये सर्वे शुक्रं विना व्यये।
लग्नशुक्रबुधाः शत्रौ ते च जीवसुधाकरौ।।
द्यूनेऽर्कारार्किशुक्राश्च धर्मेऽर्कारार्किविदुरुः।।

पूर्वोक्त करण-(बिन्दु)-स्थान से ही अन्य स्थान (रेखाप्रद) भी विद्वानों को जानना चाहिए; फिर भी अब मैं पण्डितों की सुगमता के लिए रेखाप्रद स्थानों को कहता हूँ। सूर्य के द्वितीय, अष्टम एवं लग्नस्थान में शनि, मंगल एवं सूर्य; पंचम में गुरु एवं बुध; तृतीय में बुध, चन्द्र एवं लग्न; चतुर्थ में लग्न, सूर्य, शनि एवं मंगल; दशम में लग्न, सूर्य, शनि, मंगल, बुध एवं चन्द्रमा; एकादश में शुक्र को छोड़कर शेष सभी ग्रह; द्वादश में लग्न, शुक्र एवं बुध; षष्ठ में लग्न, शुक्र, बुध तथा गुरु एवं चन्द्रमा; सप्तम में सूर्य, मंगल, शनि एवं शुक्र तथा नवम में सूर्य, मंगल, शनि, बुध और गुरु-ये सभी रेखाप्रद होते हैं।

सूर्य के रेखाबोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	।		।				।		3
2	।		।				।		3
3		।		।				।	3
4	।		।				।	।	4
5				।	।				2
6		।		।	।	।		।	5
7	।		।				।		3
8	।		।				।		3
9	।		।	।	।		।		5
10	।	।	।	।			।	।	6
11	।	।	।	।		।	।	।	7
12				।	।	।			3

रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
1	3	1	3	5	6	1	3
2	6	2	5	6	7	2	4
4	10	4	6	9	12	4	6
7	11	7	9	11	0	7	10
8	0	8	10	0	0	8	11
9	0	9	11	0	0	0	12
10	0	10	12	0	0	10	0
11	0	11	0	0	0	11	0
0	0	0	0	0	0	0	0

चन्द्रमा के रेखाकारक ग्रह और स्थान

ज्ञेन्दुजीवाः कुजार्यौ ज्ञार्केन्द्वारार्कितनूशनाः।।
जीवशुक्रबुधा भौमबुधशुक्रशनैश्चराः।
रवीन्द्वारार्किलग्नानि रवीन्द्वर्यज्ञभार्गवाः।।
अर्कज्ञजीवाः शुक्रेन्दू ते च तौ लग्नभूसुतौ।
सर्वे शून्यं क्रमात्प्रोक्तं स्थानं शीतकरस्य च।।

चन्द्रमा से प्रथम स्थान में बुध, चन्द्र एवं गुरु; द्वितीय में मंगल एवं गुरु; तृतीय में बुध, रवि, चन्द्र, मंगल, शनि, लग्न एवं शुक्र; चतुर्थ में गुरु, शुक्र एवं बुध; पंचम में मंगल, बुध, शुक्र एवं शनि; षष्ठ में रवि, चन्द्र, मंगल, शनि एवं लग्न; सप्तम में सूर्य, चन्द्र, गुरु, बुध और शुक्र; अष्टम स्थान में रवि, बुध एवं गुरु; नवम स्थान में शुक्र एवं चन्द्र; दशम में सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, लग्न तथा मंगल एवं एकादश स्थान में सभी ग्रह रेखाप्रद होते हैं। द्वादश स्थान में कोई भी ग्रह रेखाप्रद नहीं होता।

चन्द्रमा के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1		।		।	।				3
2			।		।				2
3	।	।	।	।		।	।	।	7
4				।	।	।			3
5			।	।		।	।		4
6	।	।	।				।	।	5
7	।	।		।	।	।			5

8	।			।	।				3
9		।				।			2
10	।	।	।	।	।	।		।	7
11	।	।	।	।	।	।	।	।	8
12									शून्य

चन्द्र के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
3	1	2	1	1	3	3	3
6	3	3	3	2	4	5	6
7	6	5	4	4	5	6	10
8	7	6	5	7	7	11	11
10	9	10	7	8	9	0	0
11	10	11	8	10	10	0	0
0	11	0	10	11	11	0	0
0	0	0	11	0	0	0	0
0	0	0	0	0	0	0	0

मंगल के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

लग्नमन्दकुजा भौमो होराज्ञेन्दुदिनाधिपाः।

मन्दारौ ज्ञरवी ज्ञेन्दुजीवार्कतनुभार्गवाः।।

मन्दारौ तौसितश्चार्किः कुजार्कार्यार्किलग्नकाः।

सर्वे गुरुसितौ स्थानं भौमस्यैवं बिदुर्बुधाः।।

मंगल के प्रथम स्थान में लग्न, शनि और मंगल; द्वितीय में केवल मंगल; तृतीय स्थान में लग्न, बुध, चन्द्र और सूर्य; चतुर्थ में शनि एवं मंगल; पंचम में बुध एवं रवि; षष्ठ में बुध, चन्द्र, गुरु, सूर्य, लग्न एवं शुक्र; सप्तम में शनि एवं मंगल; अष्टम में शनि, मंगल और शुक्र; नवम में केवल शनि; दशम में मंगल, सूर्य, गुरु, शनि एवं लग्न; एकादश में समस्त ग्रह एवं द्वादश स्थान में गुरु और शुक्र-ये ग्रह रेखाकारक होते हैं।

मंगल के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1							।	।	3
2			।						1
3	।	।		।				।	4
4			।				।		2
5	।			।					2
6	।	।		।	।	।		।	6

7			|				|		2
8			|			|	|		3
9							|		1
10	|		|		|		|	|	5
11	|	|	|	|	|	|	|	|	8
12									शून्य

मंगल के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
3	3	1	3	6	6	1	1
5	6	2	5	10	8	4	3
6	11	4	6	11	11	7	6
10	0	7	11	12	12	8	10
11	0	8	0	0	0	9	11
0	0	10	0	0	0	10	0
0	0	11	0	0	0	11	0

बुधाष्टक वर्ग में रेखाप्रद ग्रह और स्थान

लग्नमन्दारशुक्रज्ञ लग्नारेन्दुसितार्कजाः।
शुक्रज्ञौ लग्नचन्द्रार्किसिताराज्ञार्कभार्गवाः।।
जीवज्ञार्केन्दुलग्नानि भूमिपुत्रशनैश्चरौ।
तौ च लग्नेन्दुशुक्रार्या मन्दारार्कज्ञभार्गवाः।।
लग्नमन्दारविच्चन्द्राः सर्वे जीवभास्कराः।।

स्वाश्रित स्थान से प्रथम में लग्न, शनि, मंगल, शुक्र एवं बुध; द्वितीय स्थान में लग्न, मंगल, चन्द्र, शुक्र और शनि; तृतीय में शुक्र एवं बुध; चतुर्थ में लग्न, चन्द्र, शनि, शुक्र एवं मंगल; पंचम में बुध, सूर्य एवं शुक्र; षष्ठ स्थान में गुरु, बुध, सूर्य, चन्द्र एवं लग्न; सप्तम में मंगल शनि; अष्टम में मंगल, शनि, लग्न, चन्द्र, शुक्र एवं गुरु; नवम में शनि, मंगल, सूर्य, बुध एवं शुक्र; दशम में लग्न, शनि, मंगल, बुध एवं चन्द्र; एकादश में समस्त ग्रह तथा द्वादश में गुरु, बुध और सूर्य-ये ग्रह रेखाप्रद होते हैं।

बुध के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न	योग
1			|	|		|	|	|	5
2		|	|			|	|	|	5
3				|		|			2

4		।	।			।	।	।	5
5	।			।		।			3
6	।	।		।	।			।	5
7			।				।		2
8		।	।		।	।	।	।	6
9	।		।	।		।	।		5
10		।	।	।			।	।	5
11	।	।	।	।	।	।	।	।	8
12	।			।	।				3

बुध के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
4	2	1	1	6	1	1	1
6	4	2	3	8	2	2	2
9	6	4	5	11	3	4	4
11	8	7	6	12	4	7	6
12	10	8	9	0	5	8	8
0	11	9	10	0	8	9	10
0	0	10	11	0	9	10	11
0	0	11	12	0	11	11	0

गुरु के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

गुरोर्लग्ने सुखे जीवलग्नारार्कबुधा धने।।
चन्द्रशुक्रौ च दुश्चक्ये मन्दार्यार्काः शनिर्व्यये।
सुते शुक्रेन्दुलग्नज्ञमन्दाश्चन्द्रं विना त्वरौ।।
लग्नारार्याऽर्केन्दवोऽस्ते मृतौ जीवार्कभूसुताः।
धर्मे शुक्रार्कलग्नेन्दुबुधा मन्दं विनाऽऽयभे।।
माने गुरुबुधारार्कशुक्रहोरास्तथा विदुः।।

गुरु के अष्टक वर्ग में अपने-अपने आश्रित स्थान से प्रथम तथा चतुर्थ स्थानों में गुरु, लग्न, मंगल, रवि एवं बुध; द्वितीय में गुरु, लग्न, मंगल, रवि, बुध, चन्द्र और शुक्र; तृतीय में शनि, गुरु एवं रवि; द्वादश स्थान में केवल शनि; पंचम में शुक्र, चन्द्र, लग्न, बुध एवं शनि; षष्ठ स्थान में पंचम स्थान में कथित ग्रहों में से चन्द्रमा को छोड़कर शेष सभी ग्रह; सप्तम स्थान में लग्न, मंगल, गुरु, रवि एवं

चन्द्रमा; अष्टम में गुरु, रवि एवं मंगल; नवम स्थान में शुक्र, रवि, लग्न, चन्द्र एवं बुध; एकादश में शनि को छोड़कर शेष सभी ग्रह तथा दशम में गुरु, बुध, मंगल, रवि, शुक्र और लग्न-ये रेखाप्रद होते हैं।

गुरु के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	।		।	।	।			।	5
2	।	।	।	।	।	।		।	7
3	।				।		।		3
4	।		।	।	।			।	5
5		।		।		।	।	।	5
6				।		।	।	।	4
7	।	।	।		।			।	5
8	।		।		।				3
9	।	।		।		।		।	5
10	।		।	।	।	।		।	6
11	।	।	।	।	।	।		।	7
12							।		1

गुरु के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
1	2	1	1	1	2	3	1
2	5	2	2	2	5	5	2
3	7	4	4	3	6	6	4
4	9	7	5	4	9	12	5
7	11	8	6	7	10	0	6
8	0	10	9	8	11	0	7
9	0	11	10	10	0	0	9
10	0	0	11	11	0	0	10
11	0	0	0	0	0	0	11

शुक्र के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

लग्नशुक्रेन्दवस्ते ते ज्ञार्क्यारास्ते ज्ञवर्जिताः।।
सुतभे लग्नशशिजशशांकर्यार्किभार्गवाः।
ज्ञारौ शून्यं सिताऽर्केन्दुगुरुलग्नशनैश्चराः।।
सर्वे रविं विना शुक्रगुरुमनाश्च मानभे।

सर्वे कुजेन्दुरवयः क्रमाद् भृगुसुतस्य च।।

शुक्र के अष्टक वर्ग में अपने-अपने आश्रित स्थान से प्रथम-द्वितीय में लग्न, शुक्र एवं चन्द्रमा; तृतीय स्थान में लग्न, शुक्र, चन्द्रमा और बुध, शनि, मंगल; चतुर्थ स्थान में लग्न, शुक्र, चन्द्रमा, शनि एवं मंगल; पंचम स्थान में लग्न, बुध, चन्द्रमा, गुरु, शनि एवं शुक्र; षष्ठ स्थान में बुध एवं मंगल; सप्तम में शून्य (कोई नहीं); अष्टम में शुक्र, सूर्य, चन्द्रमा, गुरु, लग्न और शनि; नवम भाव में रवि को छोड़कर शेष समस्त ग्रह; दशम में शुक्र, गुरु, शनि; एकादश में सभी ग्रह एवं द्वादश में मंगल, चन्द्रमा और रवि रेखाप्रद होते हैं।

शुक्र के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1		।				।		।	3
2		।				।		।	3
3		।	।	।		।	।	।	6
4		।	।			।	।	।	5
5		।		।	।	।	।	।	6
6			।	।					2
7									शून्य
8	।	।			।	।	।	।	6
9		।	।	।	।	।	।	।	7
10					।	।	।		3
11	।	।	।	।	।	।	।	।	7
12	।	।	।						3

शुक्र के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
8	1	3	3	5	1	3	1
11	2	4	5	8	2	4	2
12	3	6	6	9	3	5	3
0	4	9	9	10	4	8	4
0	5	11	11	11	5	9	5
0	8	12	0	0	8	10	8
0	9	0	0	0	9	11	9
0	11	0	0	0	10	0	11
0	12	0	0	0	11	0	0

शन्यष्टक वर्ग में रेखाप्रद ग्रह और स्थान

शने रवितनू सूर्यो लग्नेन्दुकुजसूर्यजाः।
लग्नार्कौ जीवमन्दाराः सर्वे सूर्यं विना क्षते।।

अर्कोऽर्कज्ञौ बुधोऽर्कारतनुज्ञाः सकलास्ततः।
कुजज्ञगुरुशुक्राश्च क्रमात् स्थानमिदं विदुः।।

शन्यष्टक वर्ग में प्रथम स्थान में रवि एवं लग्न; द्वितीय में सूर्य; तृतीय में लग्न, चन्द्र, मंगल एवं शनि; चतुर्थ में लग्न एवं सूर्य; पंचम में गुरु, शनि एवं मंगल; षष्ठ में सूर्य के अतिरिक्त सभी ग्रह; सप्तम में सूर्य; अष्टम में रवि एवं बुध; नवम में बुध; दशम में रवि, मंगल, लग्न एवं बुध; एकादश में समस्त ग्रह एवं द्वादश में मंगल, बुध, गुरु और शुक्र रेखाप्रद होते हैं।

शन्यष्टक में रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	।							।	2
2	।								1
3		।	।				।	।	4
4	।							।	2
5			।		।		।		3
6		।	।	।	।	।	।	।	7
7	।								1
8	।			।					2
9				।					1
10	।		।	।				।	4
11	।	।	।	।	।	।	।	।	8
12			।	।	।	।			4

रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ल.
1	3	3	6	5	6	3	1
2	6	5	8	6	11	5	3
4	11	6	9	11	12	6	4
7	0	10	10	12	0	11	6
8	0	11	11	0	0	0	10
10	0	12	12	0	0	0	11
11	0	0	0	0	0	0	0

लग्न की बिन्दुसंख्या तथा बिन्दुप्रद ग्रह

तनौ तुर्ये च वह्निः स्याद् दुश्चक्ये द्वौ धने शराः।
बुद्धिमृत्युंकरिःफेषु षट् खेशक्षतराशिषु।।
रूपं स्त्रियां गुरुं त्यक्त्वा लग्नस्य करणं त्विदम्।
होरासूर्येन्दवो लग्ने लग्नारेन्द्विनसूर्यजाः।।
गुरुज्ञौ लग्नचन्द्रारा लसूचंमंबुसौरयः।

क्षते शुक्रस्तथा चैकः कामे सर्वे गुरुं विना।।
मृतौ भृगुबुधौ त्यक्त्वा धर्मे गुरुसितौ विना।
कर्मण्याये तथा शुक्रो व्यये सूर्येन्दुवर्जिताः।।

लग्न से प्रथम तथा चतुर्थ में तीन, तृतीय स्थान में दो, द्वितीय में पाँच, पंचम-अष्टम-नवम एवं व्यय में छः, दशम-एकादश तथा षष्ठ भाव में एक एवं सप्तम भाव में गुरु के अतिरिक्त शेष सभी ग्रह करणप्रद होते हैं। जैसे प्रथम भाव में लग्न, सूर्य, चन्द्रमा द्वितीय में लग्न भौम, चन्द्रमा, शनि, सूर्य; तृतीय में गुरु, बुध; चतुर्थ में लग्न, चन्द्र, मंगल; पंचम में लग्न, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि; षष्ठ में शुक्र; सप्तम में गुरु के अतिरिक्त शेष समस्त ग्रह; अष्टम में शुक्र और बुध के अतिरिक्त सभी ग्रह; धर्मभाव में गुरु एवं शुक्र का त्याग कर शेष समस्त ग्रह; दशम एवं एकादश दोनों में केवल शुक्र एवं व्ययभाव में सूर्य-चन्द्रमा को छोड़कर शेष ग्रह करणप्रद होते हैं।

लग्न के बिन्दुबोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1	0	0						0	3
2	0	0	0				0	0	5
3				0	0				2
4		0	0					0	3
5	0	0	0	0			0	0	6
6						0			1
7	0	0	0	0		0	0	0	7
8	0	0	0		0		0	0	6
9	0	0	0	0			0	0	6
10						0			1
11						0			1
12			0	0	0	0	0	0	6

इस चक्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन ग्रहों से जिन-जिन भावों में शून्य पड़े हैं, वह स्थान अशुभप्रद एवं शेष स्थान शुभप्रद हैं।

लग्नाष्टक वर्ग के भावों में रेखा-(शुभ)-प्रद स्थान

लग्नस्येदं तु संप्रोक्त करणं द्विजपुङ्गव!।
अथ स्थानं प्रवक्ष्यामि लग्नस्य द्विजपुङ्गव!।।
आर्किज्ञशुक्रगुर्वाराः सौम्यदेवेज्यभार्गवाः।
हित्सा सौम्यगुरु शेषाः सुज्ञेज्यभृगुसूर्यजाः।।
तथा जीवभृगू बुद्धौ सर्वे शुक्रं विना क्षते।
जीव एकस्तथा द्यूने मृतौ सौम्यभृगू तथा।।

धर्मे गुरुसितावेव खे भवे शुक्रमन्तरा।
सूर्य-चन्द्रौ तथा रिष्फे स्थानं लग्नस्य कीर्तितम्।।

हे द्विज! इससे लग्नाष्टक वर्ग के सभी करणों (बिन्दुप्रद) को बताया गया है। अब मैं रेखाओं (शुभप्रद स्थानों) को कह रहा हूँ। प्रथम भाव में शनि, बुध, मंगल, गुरु तथा शुक्र रेखा-(शुभ)-प्रद हैं। द्वितीय में बुध, गुरु एवं शुक्र रेखाप्रद हैं। तृतीय भाव में बुध, गुरु के अतिरिक्त शेष सभी ग्रह; चतुर्थ में सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र और शनि तथा पंचम भाव में गुरु तथा शुक्र रेखाप्रद हैं। षष्ठ भाव मेंर शुक्र को छोड़कर शेष सभी ग्रह रेखाप्रद हैं। सप्तम में केवल गुरु; अष्टम भाव में बुध एवं शुक्र; धर्म-(नवम)-भाव में गुरु-शुक्र एवं दशम तथा एकादश भाव में शुक्र को छोड़कर शेष समस्त ग्रह और व्यय भाव में सूर्य एवं चन्द्र रेखा-(शुभ)-प्रद होते हैं।

लग्नाष्टक वर्ग में रेखाबोधक चक्र

भा.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
1			।	।	।	।	।		5
2				।	।	।			3
3	।	।	।			।	।	।	6
4	।			।	।	।	।		5
5					।	।			2
6	।	।	।	।	।		।	।	7
7					।				1
8				।		।			2
9					।	।			2
10	।	।	।	।	।		।	।	7
11	।	।	।	।	।		।	।	7
12	।	।							2

अष्टम वर्गों के माध्यम से ग्रहों का शुभाशुभ स्थान अवगत करना हो तो जन्माङग चक्रस्थ ग्रहों के स्थान से अष्टक वर्ग में जितने शुभकारक स्थान निर्दिष्ट हैं, उनमें रेखा (।) तथा अशुभ स्थान में बिन्दु (0) रखने से शुभाशुभबोधक रेखा-बिन्दु रखें, इस तरह लग्नसहित सभी ग्रहों के अष्टक वर्ग कुण्डली सम्पन्न होंगे।

उदाहरण-सूर्याष्टक वर्ग में सूर्य से 1।2।4।7।8।9।10।11 स्थान रेखा-(शुभ)-प्रद होते हैं, अतः कुण्डली में स्थित सूर्य से इन स्थानों में रेखा होंगे; शेष 3।5।6।12 भावों में बिन्दु होंगे। इसी प्रकार चन्द्रमा से 3।6।10।11 में रेखा एवं शेष में शून्य; मंगल से 1।2।4।7।8।9।10।11 में रेखा, शेष में बिन्दु; बुध से 3।5।6।9।10।11।12 में रेखा एवं शेष में बिन्दु; गुरु से 5, 6, 9, 11 में रेखा, शेष बिन्दु; शुक्र से 6, 7, 12 में रेखा एवं शेष में बिन्दु; शनि से 1।2।4।7।8।9।10।11 में रेखा तथा शेष में बिन्दु

एवं लग्न से 3।4।6।10।11।12 में रेखा और शेष में बिन्दु रखने से सूर्याष्टक वर्गकुण्डली हो जायेगी। नीचे **जन्माङ्ग चक्र द्रष्टव्य है -**

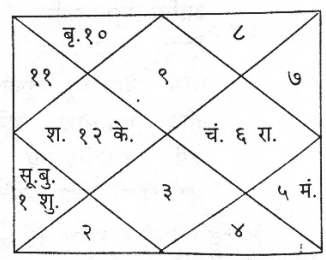

॥ जन्मकुण्डली ॥

चन्द्राष्टक वर्ग

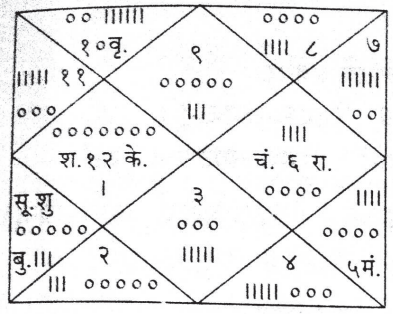

भौमाष्टक वर्ग

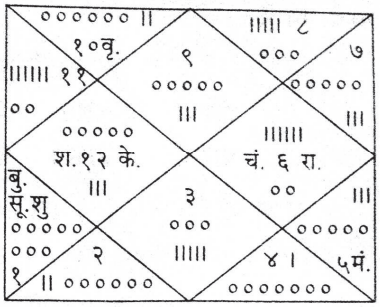

बुधाष्टक वर्ग

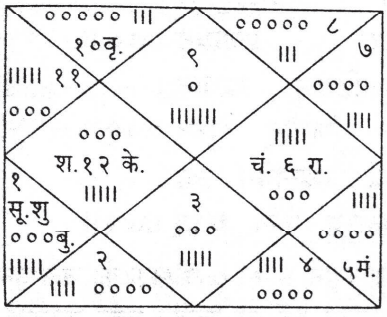

गुर्वष्टक वर्ग

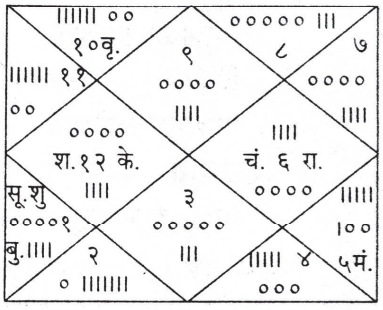

शुक्राष्टक वर्ग

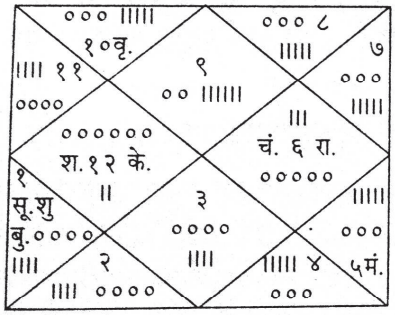

शन्यष्टक वर्ग

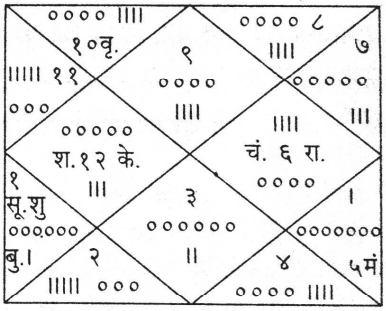

लग्नाष्टक वर्ग

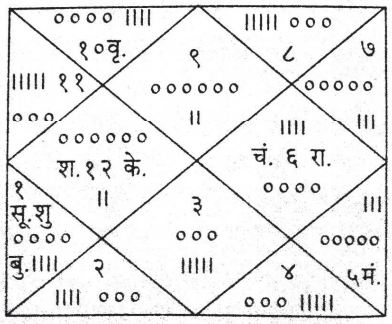

उपर्युक्त कुण्डलियों में शुभ भावद्योतक रेखायें और अशुभ भावद्योतक शून्य प्रदर्शित किये गये हैं।

करण तथा बिन्दु-परिचय प्रकार

करणं बिन्दुवत् लेख्यं स्थानं रेखास्वरूपकम्।
करणं त्वशुभदं प्रोक्तं स्थानं शुभफलप्रदम्।।

करण को बिन्दुरूप (0) तथा स्थान को रेखाकार म लिखना चाहिए। करण (बिन्दु) को अशुभप्रद और स्थान (रेखा) को शुभप्रद जानना चाहिए।

करण, रेखान्यास हेतु चक्रस्वरूप

दशरेखा लिखेदूर्ध्वास्तिर्यग् रेखाश्चतुर्दश।
नगेशकोष्ठसंयुक्तं चक्रमेवं प्रजायते।।
तिर्यगष्टसु कोष्ठेषु विलग्नसहितान् खगान्।
आद्येषुर्ध्वाधरेष्वेवं भावसंख्या लिखेद् बुधः।।
यथोक्तं विन्यसेत् तत्र करणं स्थानमेव वा।
ततः शुभाऽशुभं ज्ञात्वा जातकस्य फलं वदेत्।।

उर्ध्वाधः दस रेखा लिखकर तिरछी 14 रेखा रखने से 117 कोष्ठक का चक्र बन जायेगा। ऊपर के समस्त तिरछे कोष्ठकों में लग्नसहित ग्रहों को लिखें। प्रथम ऊर्ध्वाधः कोष्ठक में द्वादश भाव संख्या रखें, फिर पूर्वोक्त प्रकार से बिन्दु तथा रेखा रखने के पश्चात् शुभाशुभ का ज्ञान कर जातक का फल कहना चाहिए।

बोध प्रश्न : -

1. अष्टक वर्ग में वर्गों की संख्या कितनी होती हैं।

   क. ४ ख. ५ ग. ८ घ. ७

2. अष्टकवर्ग में सूर्यादि सप्तग्रह के अतिरिक्त निम्न में कौन है -

   क. राशि ख. लग्न ग. नक्षत्र घ. कोष्ठक

3. ग्रह जिन राशियों में शुभफल देते है, उन्हें जातकपारिजात के अनुसार किस चिह्न से प्रदर्शित करते हैं।

   क. (०) ख. (।) ग. (।।) घ. कोई नहीं

4. पराशर के अनुसार ग्रह जिन राशियों में शुभ फल देते हैं, उन्हें किस बिन्दु द्वारा लिखते हैं -

क. (०) ख. (।) ग. (।।) घ. कोई नहीं

5. जातकपारिजात के अनुसार लग्नाष्टकवर्गांक कितने होते है-

क. ४८ ख. ४९ ग. ४७ घ. ३११

6. पराशर ने अष्टक वर्ग को निम्न में किस प्रकार से बतलाया है-

क. बिन्दु रेखा प्रद ख. ० ग. ।। घ.उपयुक्त सभी

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है जन्माङ्ग चक्र व्यक्ति के जन्मकालिक गगनमण्डल का ऐसा मानचित्र होता है जो तत्कालीन ग्रहस्थिति को दर्शाता है। व्यक्ति निरन्तर परिवर्तनशील ग्रहस्थिति, जिसे गोचर कहते हैं, से भी प्रभावित होता है। इष्ट समय में ग्रहस्थिति को दर्शाने वाला गगनमण्डल का मानचित्र गोचरचक्र या गोचरकुण्डली के नाम से जाना जाता है। जन्माङ्ग में कोई ग्रह यदि शुभद स्थिति में हो और गोचरकुण्डली में भी सुखद स्थिति में हो तो उस ग्रह का पूर्ण शुभ फल जातक को प्राप्त होता है। किन्तु यदि उक्त ग्रह गोचरकुण्डली में शुभद स्थिति में नहीं है तो उस ग्रह के फल में न्यूनता आती है या नेष्ट फल को स्पष्टता से जानने के लिए **अष्टकवर्ग** का निरूपण पूर्वाचार्यों द्वारा किया गया है।

ग्रह अपनी गति से अविराम चलते हुए द्वादश राशियों को संयमित करते हैं। जन्म के समय जिन राशियों में वे स्थित होते हैं उसके आगे चलते हुए कुछ राशियों में वे शुभ फल और कुछ राशियों में नेष्ट फल देते है। जिन राशियों में वे शुभ फल देते हैं उसे बिन्दु (०) के द्वारा और जिनमें नेष्ट फल देते हैं उसे रेखा (।) के द्वारा चिन्हित करने की प्रथा है। पराशरादि कतिपय आचार्यों ने इसके विपरीत शुभप्रद राशि में रेखा में (।) और पापफलद राशियों में बिन्दु (०) चिन्ह अंकित करने का निर्देश किया है। जातकपारिजात ग्रन्थ में शुभ स्थान में बिन्दु (०) और अशुभ स्थान में रेखा (।) चिह्न लगाने का निर्देश आचार्य ने किया है। जैसे सूर्य अपनी राशि में अपनी राशि से दूसरी, चौथी, सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं राशि में शुभ फल देता है। अतः इन राशियों में रेखा (।) चिन्ह लगाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के शुभाशुभ फलानुसार बिन्दु और रेखा लगाने से अष्टकवर्ग चक्र तैयार होता है।

अब यहाँ सूर्यादि सप्त ग्रह और लग्न इन आठों के वर्ग का विचार करने के कारण ही फलादेश की इस पद्धति को **'अष्टकवर्ग'** कहते हैं।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

अष्ट – ८

भौम - मंगल

भृगु – शुक्र

अविराम – जिस पर विराम नहीं लगता

शुभद – शुभ फल देने वाला

गगनमण्डल – आकाश मण्डल

सुखद – सुख देने वाला

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. क
4. ख
5. ख
6. क

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातकपारिजात – अष्टकवर्गाध्याय:

2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – अष्टकवर्गाध्याय:

3. लघुजातक – अष्टकवर्गाध्याय:

4. वृहज्जातक - अष्टकवर्गाध्याय:

5. फलदीपिका – अष्टकवर्गाध्याय:

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातकपारिजात – मूल लेखक – आचार्य वैद्यनाथ, टीकाकार – हरिशंकर पाठक

2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – मूल लेखक – पराशर, टीकाकार – पं. पद्मनाभ शर्मा

3. लघुजातक – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय
4. वृहज्जातक - मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. सत्येन्द्र मिश्र
5. फलदीपिका – मूल लेखक – मन्त्रेश्वर, टीकाकार – गोपेश कुमार ओझा

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. अष्टक वर्ग से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. लघुजातक के अनुसार अष्टकवर्ग का वर्णन कीजिये।
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्र के अनुसार अष्टकवर्ग को प्रतिपादित कीजिये।
4. अष्टक वर्ग के प्रयोजन पर प्रकाश डालिये।
5. सोदाहरण अष्टकवर्ग का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई - २ भिन्नाष्टक वर्ग निर्माण

इकाई की संरचना

२.१ प्रस्तावना

२.२ उद्देश्य

२.३ भिन्नाष्टक वर्ग परिचय

२.४ भिन्नाष्टक वर्ग निर्माण

२.५ सारांश

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

२.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना

MAJY-608 के द्वितीय खण्डान्तर्गत यह दूसरी इकाई है जिसका शीर्षक है – भिन्नाष्टक वर्ग। इससे पूर्व की इकाई में आपने अष्टकवर्ग का अध्ययन कर लिया है। अब आप उससे भिन्न अर्थात् भिन्नाष्टक वर्ग का अध्ययन करने जा रहे हैं।

लग्न सहि सूर्यादि सप्त ग्रहों के सहित चक्र को लिख कर उनमें कथित इन आठों के शुभ स्थानों पर बिन्दु अंकित करने से सभी ग्रहों के अलग-अलग अष्टकवर्ग होते हैं। इनको '**भिन्नाष्टकवर्ग**' कहते हैं।

अत: आइए अब हम सब भिन्नाष्टक वर्ग का इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

२.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान जायेंगे कि –

- भिन्नाष्टक वर्ग क्या है।
- अष्टक वर्ग से कैसे भिन्नाष्टक वर्ग का निर्माण किया जाता है।
- भिन्नाष्टक वर्ग में विशेष क्या होता है।
- भिन्नाष्टक वर्ग का महत्व क्या है।

२.३ भिन्नाष्टक वर्ग परिचय

लग्न सहित सूर्यादि सप्त ग्रहों के सहित चक्र को लिख कर उनमें कथित इन आठों के शुभ स्थानों पर बिन्दु अंकित करने से सभी ग्रहों के अलग-अलग अष्टकवर्ग होते हैं। इनको '**भिन्नाष्टकवर्ग**' कहते हैं। प्रत्येक ग्रह के बिन्दुओं की संकलित संख्या इस प्रकार हैं -

सूर्य-४७	बुध-५४	शनि-३९
चन्द्र-४९	बृहस्पति-४६	
भौम-३९	शुक्र-५२	

भिन्नाष्टक वर्ग में ग्रहों के समस्त बिन्दुओं का योग ३३७ होता है। सर्वाष्टक वर्ग को समुदाय कहते है।

जैसा कि आचार्य वैद्यनाथ जी ने स्वग्रन्थ जातकपारिजात में कहा है –

चक्रं विलिख्य सह लग्नदिवकाराद्यैः।
सूर्यादिलग्नभवनान्तवियच्चराणाम्।।
वाक्याष्टकोपगतवर्णनियोजिताश्चेद्
भिन्नाष्टवर्गजनिताखिलबिन्दवः स्युः।।
देवो धवो धीगवशस्तमो रमा धूलिः क्रमादुष्णकरादिबिन्दवः।
सालोलसंख्याः समुदायबिन्दवः सर्वाष्टवर्गः समुदायसंज्ञकः।।

अब आपको यह भी जानना चाहिए कि जिन राशियों में बिन्दुओं की संख्या अधिक हो उन राशियों के संक्रमण काल में ग्रह शुभ फल देते हैं। जो राशियाँ बिन्दु की अपेक्षा अधिक रेखाओं से संयुक्त हों उनके संक्रमण काल में ग्रह कष्टप्रद होते हैं।

उदाहरणार्थ निम्न चक्र देखिए –

सूर्याष्टकवर्ग-कोष्ठक

	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
सू.	×०	०	।	०	।	।	०	०	०	०	०	।
चं.	०	०	।	×।	।	०	।	।	०	।	।	।
मं.	०	।	×०	०	।	०	।	।	०	०	०	०
बु.	×।	।	०	।	०	०	।	।	०	०	०	०
बृ.	०	।	०	।	×।	।	।	।	०	०	।	।
शु.	।	०	×।	।	।	।	।	०	०	।	।	।
श.	०	०	०	०	०	।	×०	०	।	०	।	।
ल.	×।	।	०	०	।	०	।	।	।	०	०	०
योग	५	४	५	४	२	४	२	३	६	६	४	३

बिन्दुयोग = ४८

आड़ी और खड़ी रेखाओं से चक्र का निर्माण करना चाहिए। आड़ी रेखा में तेरह कोष्ठक और रखड़ी रेखा में 9 कोष्ठक बनाने से चक्र में कुल 130 कोष्ठक होंगे जिसमें 10 पंक्तियाँ और 13 कालम होंगे। शीर्ष पंक्ति के कोष्ठकों में जिस ग्रह का अष्टकवर्ग बना रहे हों उसकी राशि से प्रारम्भ कर द्वादश राशियों के सूचक अंकों को तथा प्रथम कालम में उस ग्रह से प्रारम्भ कर लग्न सहित सातों ग्रहों के नाम लिखें। जो ग्रह जिस राशि में स्थित हो उस राशि के नीचे और ग्रह के सामने वाले कोष्ठक

को × चिन्ह से चिन्हित करें। जैसे संलग्न जन्मा... में सूर्य और बुध कन्या राशि में स्थित हैं। इसलिए कन्या राशि के नीचे और सूर्य के सामने के कोष्ठक में × चिन्ह अंकित है और उसी कालम में बुध के सामने के कोष्ठक में भी वैसा ही चिन्ह अंकित है। भौम वृश्चिक राशि में स्थित है। इसलिए भौम के सामने वृश्चिक राशि के नीचे वाले कोष्ठक में भी × चिन्ह अंकित है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की स्थिति को प्रदर्शित करना चाहिए। अनन्तर ग्रहस्थितियों को प्रदर्शित कर ग्रहाधितिष्ठित राशि से ततद् ग्रहों के पूर्वाक्त अष्टकवर्गा... के अनुसार ० और । चिन्हों को गिनकर अंकित करने से ग्रह का अष्टकवर्ग तैयार होता है। जैसे सूर्य की स्थिति को प्रगट करने वाला चिन्ह × कन्या के नीचे अंकित है। सूर्य 1, 2, 4, 7, 8, 9, 10,

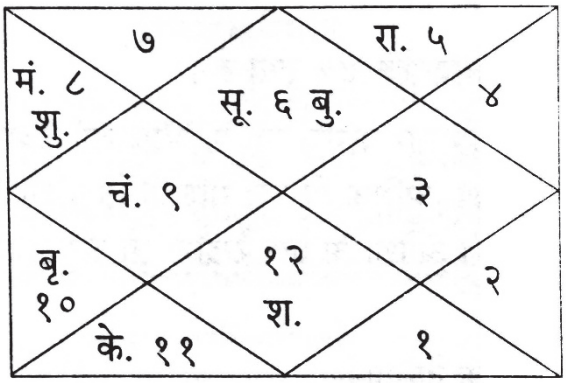

जन्माङ्गचक्र

11वीं राशियों में शुभद होता है इसलिए कन्या, तुला, धनु, मीन, मेष, वृष, मिथुन और कर्क राशियों के नीचे के कोष्ठकों में बिन्दु (०) और अशुभ राशियों 3, 5, 6 और 12वीं राशियों वृश्चिक, मकर, कुम्भ और सिंह राशियों के नीचे के कोष्ठकों में रेखा (।) चिन्ह अंकित किया गया है। इसी प्रकार सभी ग्रहों के कथित अष्टकवर्गा... के अनुसार बिन्दु और रेखा चिन्ह सभी कोष्ठकों में अंकित करना चाहिए। इस प्रकार अन्य ग्रहों और लग्न के अष्टकवर्ग तैयार होते हैं।

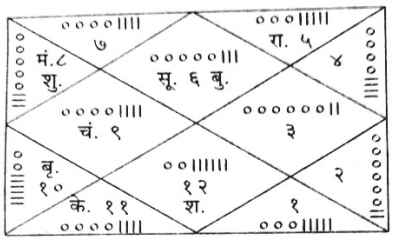

सूर्याष्टकवर्ग चक्र (४८)

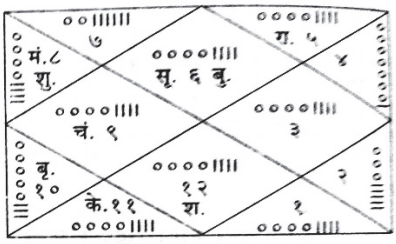

सोमाष्टकवर्ग चक्र (४९)

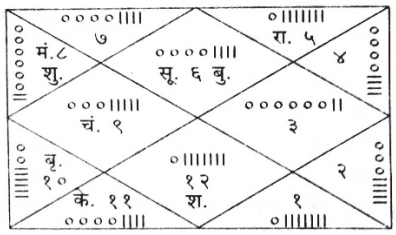

भौमाष्टकवर्ग चक्र (३९)

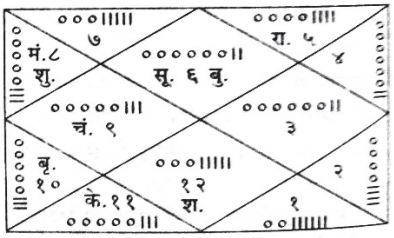

बुधाष्टकवर्ग चक्र (५४)

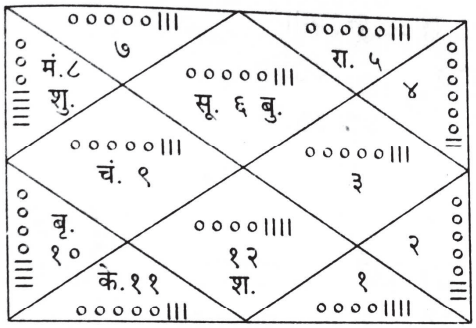

गुर्वष्टकवर्ग चक्र (५६)

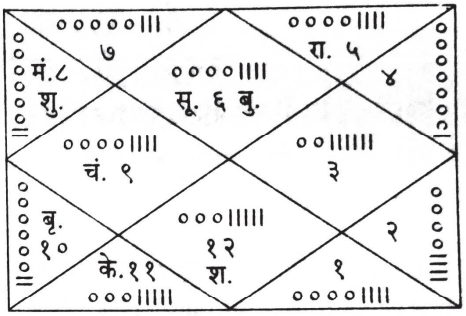

भृग्वष्टकवर्ग चक्र (५२)

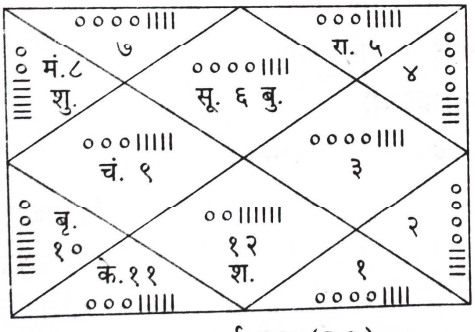

शन्यष्टकवर्ग चक्र (३९)

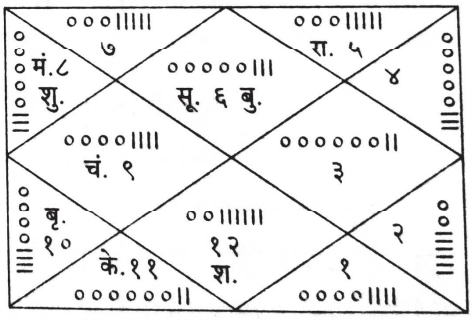

लग्नाष्टकवर्ग चक्र (४९)

अब यहाँ भिन्नाष्टक वर्ग के फल कथन का वर्णन करते हैं।

मेषादियदगृहगता वसुसंख्ययाता
स्तद्भावपुष्टिबलवृद्धिकरा भवन्ति।।
षट्पंचसप्तसहितानि शुभप्रदानि
त्रिद्वयेकबिन्दुयुतभानि न शोभनानि।।

अर्थात् आठ बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में हो उन भावों की वृद्धि होती है। ५,६,७ बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में स्थित हों उन भावों का फल शुभप्रद होता है। जिन भावों में १,२,३ बिन्दुओं से युक्त राशियाँ स्थित हों उन भावों के फल की हानि होती है।

मिश्रं फलं भवति सागरबिन्दुयोगे
रोगापवादभयदा यदि शून्यभावा:।।
एकादिबिन्दुयुतभानुसुखग्रहाणां
भिन्नाष्टवर्गजनि सर्वफलं प्रवच्मि।।

श्लोक का अर्थ है कि जिस भाव में चार बिन्दुओं से युक्त राशि स्थित हो उस भाव के मिश्रित फल अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के फल जातक को प्राप्त होते हैं। किसी ग्रह के अष्टकवर्ग के जिस भाव में बिन्दु रहित राशि स्थित हो तो गोचर से उक्त ग्रह द्वारा उस राशि के संक्रमण काल में अत्यन्त अनिष्ट फल रोगापवाद भय आदि होते हैं। यह अष्टकवर्ग के सामान्य फल है।

करोति नानाविधरोगदु:खभयाटनादीनि च सैकबिन्दु:।
द्विको मनस्तापनृपालचोरकृतापवादाशननाशनानि।।

एक बिन्दु सहित राशि में जब अष्टकवर्ग सम्बन्धित ग्रह संक्रमण करता है तो जातक को अनेक व्याधियों से कष्ट, सन्ताप, भय, यात्रा से कष्ट आदि का फल होता है। दो बिन्दयुक्त राशि के सम्बन्धित ग्रह द्वारा संक्रमण काल में मानसिक सन्ताप, राजा, चोर से भय, अपवाद, भोज्य पदार्थों का अभाव होता है।

त्रिकस्त्वसंचारकृशावलम्ब्कलेवरव्याकुलमानसानि
सुखासुखार्थ व्ययवित्तलाभफलप्रद: सागरबिन्दुक: स्यात्।।

तीन बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में मार्गावरोध, शारीरिक दौर्बल्य और मानसिक व्याकुलता होती है। चार बिन्दओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में सुख-दु:ख, धन की हानि और लाभ आदि अर्थात् मिश्रित फल देते हैं।

सहस्रलाभसुतलालनसाधुसंग
विद्याधनानि कुरूते च सपंचबिन्दु:।।

षड्बिन्दुकस्तु नवमोहनरूपशील
संग्रामजिद्धनयशोबलवाहनानि।।

यदि पाँच बिन्दु युक्त राशि संक्रमित हो तो उस अवधि में सुन्दर वस्त्रों का लाभ, पुत्र के लालन-पालन का सुख, सत्संगादि का तथा विद्या-धनादि का सुख होता है। छ: बिन्दुओं से संयुक्त राशि के संक्रमण काल में शारीरिक सौन्दर्य और स्वाभाविक शील में वृद्धि, संग्राम में विजय, तथा धन यश बल की वृद्धि और वाहनादि का सुख प्राप्त होता है।

ससप्तबिन्दुस्तुरगादियानसेनाधनप्राभवशोभनानि
बिन्द्वष्टक: सप्तगुणाभिरामराजप्रतापं प्रकटीकरोति।।

इसका अर्थ है कि सात बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में अश्वादि से युक्त वाहन का सुख तथा सेना, धन, प्रभाव और सुन्दर वाहनों का लाभ होता है। आठ बिन्दुओं से युक्त राशि यदि संक्रमित हो तो राजा के सात गुणों-स्वामित्व, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सेना से युक्त राजा होता है।

स्वोच्चमित्रादिवर्गस्था: केन्द्रादिबलसंयुता:।
अनिष्टफलदा: सर्वे स्वल्पबिन्दुयुता यदि।।

अर्थात् अपनी उच्चराशि अथवा मित्रराशि के वर्ग में स्थित ग्रह भी गोचर से जब अल्प बिन्दुओं से युक्त राशि को संक्रमित करते हैं तब जातक को अनिष्ट फल देते हैं।

दुष्टस्थान स्थिता ये च ये च नीचारिभांशगा:।
ते सर्वे शुभदा नित्यमधिबिन्दुयुता यदि।।

अर्थात् ग्रह चाहें दु:स्थान में हो अथवा अपनी नीच राशि या शत्रु राशि के नवांश मं हो वे भी गोचर से जब अधिक बिन्दुओं से युक्त राशि का संक्रमण करते हैं तब उक्त राशि जिस भाव में स्थित हो उस भाव की वृद्धि करते हैं।

बोध प्रश्न : -

1. निम्न में भिन्नाष्टक वर्ग किसका नहीं होता हैं।

   क. सूर्य ख. चन्द्र ग. मंगल घ. राहु

2. भिन्नाष्टकवर्ग में सूर्य की बिन्दु संख्या कितनी है।

   क. ४७ ख. ३७ ग. ३२ घ. ४९

3. भिन्नाष्टकवर्ग में ग्रहों की कुल बिन्दु संख्या है।

क. ३०० ख. ४४२ ग. ३३७ घ. २३७

4. शनि का बिन्दु संकलित संख्या है।

क. ३७ ख. ३८ ग. ३९ घ. ४०

5. निम्न में सूर्यादि सप्त ग्रहों का होता है।

क. अष्टक वर्ग ख. भिन्नाष्टक वर्ग ग. समुदयाष्टक वर्ग घ. सभी

6. अपनी उच्चराशि में गोचर से जब अल्प बिन्दुओं से युक्त राशि को ग्रह संक्रमित करते है तो क्या फल होता है।

क. शुभ ख. अशुभ ग. वृद्धि घ.उपयुक्त सभी

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है लग्न सहित सूर्यादि सप्त ग्रहों के सहित चक्र को लिख कर उनमें कथित इन आठों के शुभ स्थानों पर बिन्दु अंकित करने से सभी ग्रहों के अलग-अलग अष्टकवर्ग होते हैं। इनको **'भिन्नाष्टकवर्ग'** कहते हैं। प्रत्येक ग्रह के बिन्दुओं की संकलित संख्या इस प्रकार हैं -

सूर्य-४७	बुध-५४	शनि-३९
चन्द्र-४९	बृहस्पति-४६	
भौम-३९	शुक्र-५२	

भिन्नाष्टक वर्ग में ग्रहों के समस्त बिन्दुओं का योग ३३७ होता है। सर्वाष्टक वर्ग को समुदाय कहते है।

जिन राशियों में बिन्दुओं की संख्या अधिक हो उन राशियों के संक्रमण काल में ग्रह शुभ फल देते हैं। जो राशियाँ बिन्दु की अपेक्षा अधिक रेखाओं से संयुक्त हों उनके संक्रमण काल में ग्रह कष्टप्रद होते हैं।

इस प्रकार अष्टकवर्ग की परम्परा में भिन्नाष्टक वर्ग का गणितीय तथा शुभाशुभ फलों को आचार्यों द्वारा कहा गया है।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

दिनकर – सूर्य

बाण - ५

भृगु – शुक्र

निजगृहे – अपने घर में

उच्चराशिगत – उच्च राशि में गया हुआ

चिरंजीवी – दीर्घायु

संक्रमण – परिवर्तन

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

२.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. क
3. ग
4. ग
5. घ
6. ख

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातकपारिजात – अष्टकवर्गाध्याय:
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – अष्टकवर्गाध्याय:
3. लघुजातक – अष्टकवर्गाध्याय:
4. वृहज्जातक - अष्टकवर्गाध्याय:
5. फलदीपिका – अष्टकवर्गाध्याय:

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातकपारिजात – मूल लेखक – आचार्य वैद्यनाथ, टीकाकार – हरिशंकर पाठक
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – मूल लेखक – पराशर, टीकाकार – पं. पद्मनाभ शर्मा
3. लघुजातक – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

4. वृहज्जातक - मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. सत्येन्द्र मिश्र

5. फलदीपिका – मूल लेखक – मन्त्रेश्वर, टीकाकार – गोपेश कुमार ओझा

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. भिन्नाष्टक वर्ग से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. सोदाहरण भिन्नाष्टक वर्ग का वर्णन कीजिये।
3. सूर्यादि ग्रहों का भिन्नाष्टक वर्ग साधन कीजिये।
4. भिन्नाष्टक वर्ग का शुभाशुभ फल लिखिये।
5. अष्टक वर्ग और भिन्नाष्टक वर्ग में क्या साम्यता है। बतलाइए।

इकाई - ३ समुदयाष्टक वर्ग निर्माण विधि

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना

३.२ उद्देश्य

३.३ समुदयाष्टक वर्ग परिचय

३.४ समुदयाष्टक वर्ग निर्माण विधि

३.५ सारांश

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना

MAJY-608 के द्वितीय खण्डान्तर्गत यह तीसरी इकाई है जिसका शीर्षक है – समुदयाष्टक वर्ग। इससे पूर्व की इकाई में आपने अष्टकवर्ग का अध्ययन कर लिया है। अब आप उससे भिन्न अर्थात् भिन्नाष्टक वर्ग का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सर्वाष्टकवर्ग को समुदाय कहते हैं। आठ बिन्दुओं (सर्वाधिक) से युक्त राशियाँ जिन भावों में हों उन भावों की वृद्धि होती हैं। 4, 6 और 7 बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में स्थित हों उन भावों का फल शुभप्रद होता है।

अत: आइए अब हम सब समुदायाष्टक वर्ग का इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

३.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान जायेंगे कि –

- समुदायाष्टक वर्ग क्या है।
- अष्टक वर्ग से कैसे समुदायाष्टक वर्ग का निर्माण किया जाता है।
- समुदायाष्टक वर्ग में विशेष क्या होता है।
- समुदायाष्टक वर्ग का महत्व क्या है।

३.३ समुदयाष्टक वर्ग परिचय

अष्टक वर्ग और भिन्नाष्टक वर्ग के अध्ययन के पश्चात् आप को यह भी जानना चाहिए कि सर्वाष्टकवर्ग क्या होता है? अत: सर्वप्रथम इसकी परिभाषा समझते है। सर्वाष्टकवर्ग को **समुदाय** कहते हैं। आठ बिन्दुओं (सर्वाधिक) से युक्त राशियाँ जिन भावों में हों उन भावों की वृद्धि होती हैं। 4, 6 और 7 बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में स्थित हों उन भावों का फल शुभप्रद होता है। जिन भावों में 1, 2 या 3 बिन्दुओं से युक्त राशियाँ स्थित हों उन भावों का फल की हानी होती है।

समुदयाष्टक वर्ग को बताते हुए आचार्य पराशर जी स्वग्रन्थ वृहत्पराशरहोराशास्त्र में कहते है कि -

मूल श्लोक: -

द्वादशारं लिखेच्चक्रे जन्मलग्नादिभैर्युतम्।

सर्वाष्टकफलान्यत्र संयोज्य प्रतिभं न्यसेत्।।

समुदायाभिधानोऽयमष्टवर्गः प्रकथ्यते।

अतः फलानि जातानां विज्ञेयानि द्विजोत्तम!।।

द्वादश कोष्ठ की कुण्डली लिखकर उस चक्र में लग्न से लेकर द्वादशपर्यन्त सभी भाव लिखकर उसमें पूर्वसाधित समस्त ग्रहों के अष्टक वर्ग में प्रत्येक राशियों की जितनी रेखाएँ हों, सबका योग कर प्रत्येक राशि में लिखना चाहिए। इसको **समुदायाष्टक** कहा जाता है। नीचे दिए गए चक्र के माध्यम से जातक का शुभाशुभ फल जानना चाहिए।।

समुदायाष्टकवर्ग चक्र

राशियाँ / ग्रह	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	योग
सूर्य	३	६	६	४	३	५	४	५	४	२	४	२	४८
चन्द्रमा	४	३	४	७	४	४	२	४	४	५	४	४	४९
मंगल	१	३	६	४	१	४	४	६	३	२	४	१	३९
बुध	२	४	६	६	४	६	३	५	५	५	५	३	५४
बृहस्पति	४	५	५	६	५	५	५	३	५	४	५	४	५६
शुक्र	४	४	२	७	४	४	५	६	४	६	३	३	५२
शनि	४	४	४	४	३	४	४	२	३	२	३	२	३९
योग	२२	२९	३३	३८	२४	३२	२७	३१	२८	२६	२८	१९	३३७
लग्न	४	२	६	५	३	५	३	५	४	४	६	२	

समुदाय-रेखाफल

त्रिंशाधिकफला ये स्यू राशयस्ते शुभप्रदाः।

पंचविंशादि-त्रिंशान्तफला मध्यफला स्मृताः।।

अतः क्षीणफला ये ते राशयः कष्टदुःखदा।

शुभे श्रेष्ठफलान् राशीन् योजयेन्मतिमान्नरः।।

कष्टराशीन् सुकार्येषु वर्जयेद् द्विजसत्तम!।

श्रेष्ठराशिगतः खेटः शुभोऽन्यत्राऽशुभप्रदः।।

समुदायाष्टक वर्ग में जिस राशि में 30 या उससे अधिक रेखा हो, वह राशि शुभप्रद होती है।

जिस राशि में 25 से 30 के मध्य रेखायें हों, वह राशि मध्यम एवं जिस राशि में 25 से न्यून रेखा हो, वह राशि अधम मानी जाती है। अधम राशि दुःख तथा कष्टप्रद होती है। अतः जिस कार्य में जिस ग्रह का बल निर्धारित है, वह ग्रह जब श्रेष्ठ राशि में प्राप्त हो, उसी समय उस कार्य को करना चाहिए। साधारणतया चन्द्रमा सभी कार्यों में ग्राह्य है; अतः चन्द्रमा जब अधिक से अधिक रेखा वाली राशि में प्राप्त हो, तभी शुभ कार्य करने चाहिए। अर्थात् शुभ राशि में चन्द्र के रहने पर कार्य सुसम्पन्न, मध्यम राशि में मध्यम एवं अधम राशि में चन्द्रमा रहने पर अनिष्टकारक होता है। इसी प्रकार विवाहादि शुभ कार्य में गुरु, भूमि, नेतृत्वसम्बन्धी कार्य मंगल इत्यादि अन्य ग्रहों को भी जानका जब अधिक रेखा वाली राशि में सम्बन्धित ग्रह प्राप्त हो, तभी कार्यारम्भ करना चाहिए।

रेखानुसार भावफल

तन्वादि-व्ययपर्यनतं दृष्ट्वा भावफलानि वै।
अधिके शोभनं ज्ञेयं हीने हानिं विनिर्दिशेत्।
मध्ये मध्यफलं ब्रूयाद् तत्तदावसमुदवम्।।

लग्न में द्वादश भावपर्यन्त राशियों की रेखा देखकर भावफल जानना चाहिए अर्थात् जिसमें समुदायाष्टक वर्ग में 30 से अधिक रेखा हो, उस भाव की वृद्धि, जिसमें 25 से कम रेखा योग हो उसमें हानि तथा जिस समुदायाष्टक वर्ग में 25-30 रेखा हो तो उस भाव का मध्यम फल जानना चाहिए।

पुनः विशिष्ट फल

मध्यात् फलाधिको लाभो लाभात् क्षीणगतो व्ययः।
लग्नं फलाधिकं यस्य भोगवानर्थवान् हि सः।
विपरीतेन दारिद्रयं भवत्येव न संशयः।।

जिस जातक के समुदायाष्टक वर्ग में दशम भाव से एकादश भाव में अधिक रेखा हो तथा द्वादश भाव में कम रेखा हो एवं लग्न में रेखा संख्या अधिक हो तो वह व्यक्ति भोगवान् एवं अर्थवान् होता है। इससे विपरीत समुदायाष्टक वर्ग में रेखाक्रम हो तो वह जातक दुःखी एवं दरिद्र होता है।

दशावस्था फल

दशावदिह भावानां कृत्वा खण्डत्रयं बुधः।
पश्येत् पापसमारूढं खण्डे कष्टकरं वदेत्।।
सौम्यैर्युक्तं शुभं ब्रूयान्मिश्रैर्मिश्रफलं यथा।
क्रमाद् बाल्याद्यवस्थासु खण्डत्रयफलं वदेत्।।

लग्न से व्यय भावपर्यन्त समान 3 खण्ड करके शुभाशुभ फल देखना चाहिए। जिस भाग में

पापग्रह अधिक हो, वह भाग (अवस्था) कष्टकारक; जिस खण्ड में शुभ ग्रह अधिक हो, वह अवस्था सुखकारक और जिस भाग में मिश्रित (अशुभ, शुभ) ग्रह हो, वह अवस्था मिश्रित अर्थात् कभी सुखकारक एवं कभी दुःखकारक होती है।

विभागक्रम से इस प्रकार हैं-लग्न से चतुर्थ भावपर्यन्त बाल्यावस्था, पंचम भाव से अष्टम भाव तक युवावस्था एवं नवम भाव से द्वादश भाव तक वृद्धावस्था जाननी चाहिए। इस प्रकार जातक को किस अवस्था में अधिक सुख, किस अवस्था में दुःख एवं किसमें सम रहेगा, आदि का विचार सरलता से अवगत किया जा सकता है।

उदाहरण- यहाँ धनु लग्न है। धनु लग्न में सूर्याष्टक वर्ग में 3 रेखा, चन्द्राष्टक वर्ग में 3 रेखा, भौमाष्टक वर्ग में 3 रेखा, बुधाष्टक वर्ग में 7 रेखा, जीवाष्टक वर्ग में 4 रेखा, शुक्राष्टक वर्ग में 6 रेखा, शून्यष्टक वर्ग में 4 रेखा तथा लग्नाष्टक वर्ग में 2 रेखा हैं। इन सबका योग 32 हुआ; यह समुदायाष्टक वर्ग में लग्नाभाव (धन) में संख्या हुई। इस प्रकार धनभाव के आठों वर्ग के योग 33 हुए, इसे द्वितीय भाव में स्थापित किया। तृतीय भाव में आठों वर्ग के योग 41 हुए, यह तृतीय भाव की रेखासंख्या हुई। चतुर्थ भाव में आठों वर्ग का योग 24 हुआ, यह चतुर्थ भाव की रेखासंख्या हुई। इसी प्रकार पंचम भाव की रेखासंख्या 24, षष्ठ भाव की रेखासंख्या 34, सप्तम भाव की रेखासंख्या 35, अष्टम भाव की रेखासंख्या 31, नवम भाव की रेखासंख्या 28, दशम भाव की रेखासंख्या 35, एकादश भाव की रेखासंख्या 32, द्वादश भाव की रेखासंख्या 32-इस तरह समुदायाष्टक वर्ग कुण्डली में न्यास कर बाल्य, यौवन, वार्धक्य की अवस्था, धन-धान्य, शारीरिक सुख, यश-अपयश इत्यादि का विचार करना चाहिए।

यहाँ नीचे चक्र में तनुभाव में 32 रेखा पड़ी है; अतः शारीरिक सुख उत्तम एवं धनभाव में 33 रेखा पड़ी है, अतः आर्थिक स्थिति अच्छी रहेगी। दर्शित चक्र में लग्न, धन, पराक्रम, शत्रु, स्त्री, आयु, कर्म तथा आयभाव में 30 से अधिक रेखायें हैं, अतः इन भावों से सम्बन्धित फल उत्तम रहेगा। धर्मभाव में 28 रेखा है, अतः धार्मिक कृत्यसम्बन्धी कार्य मध्यम होंगे। भूमि, मातृ, विद्या, पुत्रादि से सम्बन्धित भाव में 25 से अल्प रेखा पड़ने के कारण इन वस्तुओं में अधम रहेगा।

समुदयाष्टक वर्ग चक्र

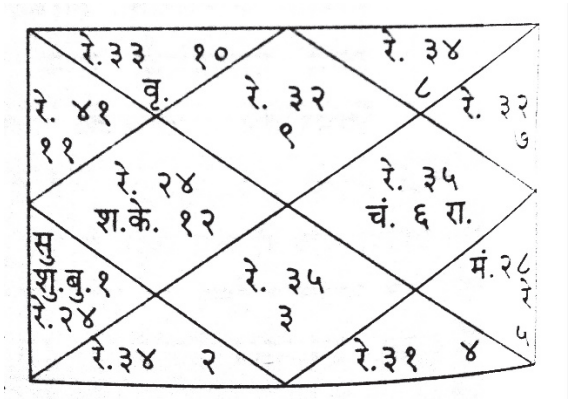

शान्तिसहित रेखाफल

रेखाभिः सप्तभिर्युक्ते मासे मृत्युभयं नृणाम्।
सुवर्णं विंशतिपलं दद्यात् द्वौ तिलपर्वतौ।।
रेखाभिरष्टभिर्युक्ते मासे मृत्युवशो नरः।
असत्फलविनाशाय दद्यात् कर्पूरजां तुलाम्।।
रेखाभिर्नवभिर्युक्ते मासे सर्पभयं वदेत्।
अश्वैश्चतुर्भिः संयुक्तं रथं दद्याच्छुभाप्तये।।
रेखाभिर्दशभिर्युक्ते मासे शस्त्रभयं तथा।
दद्याच्छुभफलावाप्त्यै कवचं वज्रसंयुतम्।।
अभिशापभयं यत्र रेखा रुद्रसमा द्विज।
दिक्पलस्वर्णघटितां प्रदद्यात् प्रतिमां विधोः।।
युक्ते द्वादशरेखाभिर्जले मृत्युभयं वदेत्।
सशस्यभूमिं विप्राय दत्वा शुभफलं भवेत्।।
विश्वप्रमितरेखाभिर्व्याघ्रान्मृत्युभयं तथा।
विष्णोर्हिरण्यगर्भस्य दानं कुर्याच्छुभाप्तये।।
शक्रप्रमितरेखाभिर्युक्ते मासे मृतेर्भयम्।
वराहप्रतिमां दद्यात् कनकेन विनिर्मिताम्।।
तिथिभिश्च नृपाद् भीतिर्दद्यात् तत्र गजं द्विज!।
रिष्टं षोडशभिर्दद्यात् मूर्तिं कल्पतरोस्तथा।।

सप्तेन्दुभिर्व्याधिभयं दद्याद् धेनुं गुडं तथा।
कलहोऽष्टेन्दुभिर्दद्याद् रत्नगोभूहिरण्यकम्।।
अङ्कन्दुभिः प्रवासः स्याच्छान्त कुर्यात् विधानतः।
विंशत्या बुद्धिनाशः स्याद् गणंशं तत्र पूजयेत्।।
रोगपीडैकविंशत्या दद्यात् धान्यस्य पर्वतम्।
यमाश्वभिर्बन्धुपीडा दद्यादादर्शकं द्विज!।।
त्रयोविंशतिसंयुक्ते मासे क्लेशमवाप्नुयात्।
सौवर्णों प्रतिमां दद्याद्रवेः सप्तपलैर्बुधः।।
वेदाश्विभिर्बन्धुहीनो दद्याद् गोदशकं नृपः।
सर्वरोगविनाशार्थं जपहोमादिकं चरेत्।।
धीहानिः पंचविंशत्या पूज्या वागीश्वरो तदा।
षड्विंशत्याऽर्थहानिः स्यात्स्वर्णं दद्याद् विचक्षणः।।
तथा च सप्तविंशत्या श्रीसूक्तं तत्र संचपेत्।
अष्टविंशतिसंयुक्ते मासे हानिश्च सर्वथा।।
सूर्यहोमश्च विधिना कर्तव्यः शुभकांक्षिभिः।
एकोनत्रिंशता चापि चिन्ताव्याकुलितो भवेत्।।
घृतवस्त्रसुवर्णानि तत्र दद्यात् विचक्षणः।
त्रिंशता पूर्णधान्याग्निरिति जातकनिर्णयः।।

समुदायाष्टक वर्ग में जिस राशि में 1 से 7 तक रेखा हो, उस माह में (यानी उस राशि में सूर्य के जाने पर) मरणतुल्य कष्ट या मृत्यु का भय रहता है, उस दोष की शान्ति के लिए 20 तोला सुवर्ण तथा तिल के 2 पर्वत (तिल के पर्वताकार 2 ढेर) दान करना चाहिए। जिस राशि में 8 रेखा हो उस माह में भी मृत्यु की आशंका रहती है। उस दोष के शमन हेतु कर्पूर का तुला दान करना चाहिए। जिसमें 9 रेखा हो, उस माह में सर्पभय रहता है, उसकी शान्ति के लिए चार अश्वयुक्त रथ दान करना चाहिए। जिस राशि में 10 रेखा हो, उस माह में शस्त्रभय होता है, अतः शुभ फल की प्राप्ति हेतु वज्रयुक्त कवचन दान करना चाहिए। जिस राशि में 11 रेखा हो, उस माह में मिथ्यापवाद (दोषारोपण) का भय रहता है, उक्त दोष की शान्ति के लिए 10 पल सुवर्ण से निर्मित चन्द्रमा का दान करना चाहिए। जिस राशि में 12 रेखा हो उस माह में जल से मृत्यु का भय रहता है, उस दोष के शमन हेतु धान्यसहित भूमि का दान करना चाहिए। जिस राशि में 13 रेखा हो, उस माह में व्याघ्र से मृत्यु का

भय रहता है, उसके लिए हिरण्ययुक्त विष्णु (अर्थात् जिसके मध्य भाग में सुवर्ण हो यानी (शालीग्राम) का दान करना चाहिए। जिस राशि में 14 रेखा हो, उस माह में मृत्यु की आशंका रहती है, उसके लिए सुवर्णनिर्मित वराह की प्रतिमा दान करनी चाहिए। जिस राशि में 14 रेखा हो, उस माह में राजभय रहता है, उसकी शान्ति के लिए हाथी का दान करना चाहिए। जिस राशि में 16 रेखा हो, उस माह में अरिष्ट का भय रहता है, उस दोष की शान्ति हेतु सुवर्णनिर्मित कल्पतरु का दान करना चाहिए। जिसमें 17 रेखा हो, उसमें व्याधि का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए धेनु तथा गुड़ का दान करना चाहिए। जिस राशि में 18 रेखा हो, उस माह में कलह का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए रत्न, गौ, भूमि एवं सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिस राशि में 19 रेखा हो उस माह में प्रवास (देशान्तर में रहने) का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए शास्त्रोक्त विधान का आश्रय लेना चाहिए। जिस राशि में 20 रेखा हो, उस माह में बुद्धिनाश का भय होता है, इसकी शान्ति हेतु गणेश का पूजन करना चाहिए। जिस राशि में 21 रेखा हो उस माह में रोग एवं पीड़ा का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए धान्यपर्वत का दान करना चाहिए। जिस राशि में 22 रेखा हो, उस मास में अपने बन्धु-बान्धवों को पीड़ा होती है, उसकी शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिस राशि में 23 रेखा हो, उस मास में क्लेश का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए 7 पल सुवर्ण से निर्मित सूर्य की प्रतिमा बनाकर दान करनी चाहिए। जिस राशि में 24 रेखा हो, उस मास में बन्धुहीनता का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए गोदान करना चाहिए तथा सभी रोगों के विनाश के लिए जप-होमादि करना चाहिए। जिस राशि में 25 रेखा हो, उस मास में बुद्धि की हानि होती है, इसकी शान्ति हेतु सरस्वती का पूजन करना चाहिए। जिस राशि में 26 रेखा हो, उस माह में अर्थ की हानि होती है, उसकी शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिसमें 27 रेखा हो, उसमें द्रव्य की हानि होती है, इसमें श्रीसूक्त का जप करना चाहिए। 28 रेखा वाली राशि में सभी प्रकार की हानि होती है, इसकी शान्ति के लिए सूर्य का होम करना चाहिए। जिस राशि में 29 रेखा हो उस माह में मानसिक चिन्ता होती है, इसकी शान्ति के लिए घृत, वस्त्र और सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिस राशि में 30 रेखा हो उस माह में धन-धान्य की पूर्ण प्राप्ति होती है।

विशेष- यहाँ पर सूर्य प्रत्येक वर्ष प्रति राशि पर जाता है, तो क्या प्रति वर्ष तत्तद् माह में अरिष्टकारक होता है? नहीं, ऐसा है कि जिस वर्ष में गुरु उस राशि में हो और सूर्य जब उस राशि में जाय तथा चन्द्रमा भी उस राशि में जिस दिन प्राप्त हो, उसी समय पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होगी; अन्य समय में नहीं होगी।

30 से अधिक रेखाओं के शुभ फल

त्रिंशाधिकामी रेखाभिर्धनपुत्रसुखाप्तयः।
चत्वारिंशाधिकाभिश्च पुण्यश्रीरुपचीयते।।

जिस राशि में 30 से अधिक रेखा हो तो उस राशि के गुरु वर्ष तथा सौर मास एवं चन्द्रमा के भी उस राशि में प्राप्त होने पर धन, पुत्र और विभिन्न प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है। जिस राशि में 40 से अधिक रेखा हो तो उस वर्ष, माह और चान्द्रनक्षत्र में आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ पुण्य, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा की अभिनव वृद्धि होती है।

अष्टक वर्ग में विशेषता

अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु।
अतोऽष्टवर्गसंशुद्धिरन्वेष्या सर्वकर्मसु।।
तावद् गोचरमन्वेष्यं यावत्र प्राप्यतेऽष्टकम्।
अष्टवर्गे तु सम्प्राप्ते गोचरं विफलं भवेत्।।

जो राशि अष्टक वर्ग से शुद्ध हो वह राशि सभी शुभ कार्यों में शुद्ध होती है। अन्यत्र सभी शुभ कृत्यों में अष्टक वर्ग की शुद्धि का अन्वेषण करना चाहिए। अष्टक वर्ग शुद्धि के अभाव में गोचर शुद्ध को देखना चाहिए। अष्टक वर्ग शुद्धि प्राप्त हो तो गोचर शुद्धि विफल हो जाती है।

विशेष- निष्कर्ष यह निकलता है कि गोचर शुद्धि से अष्टक वर्ग की शुद्धि प्रबल है। अतः शुभ कृत्यों में ग्रह का बलाबल देखने के लिए अष्टक वर्ग शुद्धि ही प्रत्यक्ष मार्ग है।

बोध प्रश्न : -

1. सर्वाष्टक वर्ग को निम्न में कहते हैं।

   क. अष्टक ख. समुदाय ग. भिन्न घ. कोई नहीं

2. अष्ट बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में हो उन भावों का क्या फल होता है।

   क. हानि ख. लाभ ग. वृद्धि घ. समृद्धि

3. ४,६,७ बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में हो उन भावों का फल क्या होता है।

   क. शुभ ख. अशुभ ग. हानि घ. वृद्धि

4. निम्न में द्वादश का शाब्दिक अर्थ है -

   क. १० ख. ११ ग. १२ घ. १४

5. जो राशि अष्टक वर्ग से शुद्ध हो वह राशि होती है।

   क. सर्वसुख दाता ख. हानि ग. दु:खदाता घ. श्रीवृद्धि

6. जिस राशि में 40 से अधिक रेखा हो तो उस वर्ष, माह और चान्द्रनक्षत्र में हो तो क्या फल होता है।

   क. अर्थवृद्धि ख. पुण्य ग. प्रतिष्ठा वृद्धि घ.उपयुक्त सभी

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सर्वाष्टकवर्ग को समुदाय कहते हैं। आठ बिन्दुओं (सर्वाधिक) से युक्त राशियाँ जिन भावों में हों उन भावों की वृद्धि होती हैं। 4, 6 और 7 बिन्दुओं से युक्त राशियाँ जिन भावों में स्थित हों उन भावों का फल शुभप्रद होता है। जिन भावों में 1, 2 या 3 बिन्दुओं से युक्त राशियाँ स्थित हों उन भावों का फल की हानी होती है।

पराशर जी के कथनानुसार द्वादश कोष्ठ की कुण्डली लिखकर उस चक्र में लग्न से लेकर द्वादशपर्यन्त सभी भाव लिखकर उसमें पूर्वसाधित समस्त ग्रहों के अष्टक वर्ग में प्रत्येक राशियों की जितनी रेखाएँ हों, सबका योग कर प्रत्येक राशि में लिखना चाहिए। इसको **समुदायाष्टक** कहा जाता है। आचार्य ने इसके भी शुभाशभ फलों का वर्णन किया है। अष्टक वर्ग की ही परम्परा में समुदयाष्टक वर्ग की बात कही गयी है।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

समुदाय – सर्वाष्टक वर्ग को समुदाय कहते है।

द्वादश - १२

अष्ट – ८

पूर्वसाधित – पहले से साधित

शुभद – शुभ फल देने वाला

सुखद – सुख देने वाला

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

३.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. ख
2. ग
3. क
4. ग
5. क
6. घ

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातकपारिजात – अष्टकवर्गाध्याय:
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – अष्टकवर्गाध्याय:
3. लघुजातक – अष्टकवर्गाध्याय:
4. वृहज्जातक - अष्टकवर्गाध्याय:
5. फलदीपिका – अष्टकवर्गाध्याय:

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातकपारिजात – मूल लेखक – आचार्य वैद्यनाथ, टीकाकार – हरिशंकर पाठक
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – मूल लेखक – पराशर, टीकाकार – पं. पद्मनाभ शर्मा
3. लघुजातक – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

4. वृहज्जातक - मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. सत्येन्द्र मिश्र

5. फलदीपिका – मूल लेखक – मन्त्रेश्वर, टीकाकार – गोपेश कुमार ओझा

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. समुदयाष्टक वर्ग से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. सोदाहरण समुदयाष्टकवर्ग का वर्णन कीजिये।
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्र के अनुसार समुदयाष्टकवर्ग का फल लिखिये।
4. वैद्यनाथ कथित समुदयाष्टक वर्ग पर प्रकाश डालिये।

इकाई - ४ अष्टक वर्ग फल विवेचन

इकाई की संरचना

४.१ प्रस्तावना

४.२ उद्देश्य

४.३ अष्टकवर्ग परिचय

४.४ अष्टक वर्ग फल विवेचन

४.५ सारांश

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना

MAJY-608 के द्वितीय खण्डान्तर्गत यह चौथी और अंतिम इकाई है जिसका शीर्षक है – अष्टकवर्ग फल। इससे पूर्व की इकाई में आपने अष्टकवर्ग के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसके शुभाशुभ फलाफल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

अष्टकवर्ग के विभिन्न प्रकार के फल कहे गये हैं। उन फलों में कुछ शुभ तथा अशुभ फल भी आचार्यों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं।

अत: आइए अब हम सब अष्टक वर्ग के शुभाशुभ फलों का इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

४.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान जायेंगे कि –

- अष्टक वर्ग क्या है।
- अष्टक वर्ग के शुभाशुभ फल क्या है।
- अष्टक वर्ग का सम्यकतया फलादेश कैसे किया जाता है।
- अष्टक वर्ग का महत्व क्या है।

४.३ अष्टकवर्ग फल परिचय

अष्टकवर्ग, भिन्नाष्टक वर्ग और समुदयाष्टक वर्ग के ज्ञान परम्परा में अब अष्टक वर्ग के शुभाशुभ फलों का वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है।

सामान्यतया अष्टक वर्ग के फल के बारे में आचार्य कहते हैं कि जिस भाव में चार बिन्दुओं से युक्त राशि स्थित हो उस भाव के मिश्रित फल अर्थात शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के फल जातक को प्राप्त होते हैं। किसी ग्रह के अष्टकवर्ग के जिस भाव में बिन्दु रहित राशि हो तो गोचर से उक्त ग्रह द्वारा उस राशि के संक्रमण काल में अत्यन्त अनिष्ट फल रोगापवाद-भय आदि होते हैं।

एक बिन्दु सहित राशि में जब अष्टकवर्ग सम्बन्धित ग्रह संक्रमण करता है तो जातक को अनेक

व्याधियों से कष्ट, सन्ताप, भय, यात्रा से कष्ट आदि फल होते है। दो बिन्दुयुक्त राशि के सम्बन्धित ग्रह

द्वारा संक्रमण काल में मानसिक सन्ताप, राजा, चोर से भय, अपवाद, भोज्य पदार्थों का अभाव होता हैं।

तीन बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में मार्गावरोध, शारीरिक दौर्बल्य और मानसिक व्याकुलता होती हैं। चार बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में सुख-दुःख, धन की हानि और लाभ आदि अर्थात् मिश्रित फल होते हैं।

यदि पाँच बिन्दु युक्त राशि के संक्रमित हो तो उस अवधि में सुन्दर वस्त्रों का लाभ, पुत्र के लालन-पालन का सुख, सत्संगति का तथा विद्या-धनादि का सुख होता हैं। छः बिन्दुओं से संयुक्त राशि के संक्रमण काल में शारीरिक सौन्दर्य और स्वाभाविक शील में वृद्धि, संग्राम (विवादादि) में विजय तथा धन-यश-बल की वृद्धि और वाहनादि का सुख प्राप्त होता है।

सात बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में अश्वादि से युक्त वाहन का सुख तथा सेना, धन, प्रभाव और सुन्दर वाहनों का लाभ होता है। आठ बिन्दुओं से युक्त राशि यदि संक्रमित हो तो राजा के सात गुणों-स्वामित्व, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सेना से युक्त राजा होता हैं।

४.४ अष्टकवर्ग फल विचार

ग्रह अपने वर्ग (अष्टकवर्ग) की उन समस्त राशियों को गोचर में संक्रमित करते समय शुभ फल देते है जो पाँच से अधिक बिन्दुओं से युक्त हों। इसके विपरीत स्थिति में अर्थात् पाँच बिन्दु से अल्प बिन्दु से युक्त राशियों के संक्रमण काल में ग्रह नेष्ट फल देते हैं। बिन्दु रहित राशियों के संक्रमण काल में अत्यन्त अनिष्ट फल देते है।

अपनी उच्चराशि अथवा मित्रराशि के वर्ग में स्थिति ग्रह भी गोचर से जब अल्प बिन्दुओं से युक्त राशि को संक्रमित करते हैं तब जातक को अनिष्ट फल ही देते हैं।

ग्रह चाहे दुःस्थान में स्थित हों अथवा अपनी नीच राशि या शत्रु राशि के नवांश में स्थित हों, वे भी गोचर से जब अधिक बिन्दुओं से युक्त राशि का संक्रमण करते हैं तब उक्त राशि जिस भाव में स्थित हो उस भाव की वृद्धि करते हैं।

दिनेशमुख्यग्रहवर्गकेषु यदा शनिः शून्यगृहं प्रयातः।
करोति पित्रादिकभावजानामतीव रोगारिभयाकुलानि।।

अर्थात् सूर्यादि ग्रहों के अष्टकवर्ग चक्रों में बिन्दु रहित भावों में (अथवा राशियों में) जब गोचर से शनि आता है तो उस भाव से प्रकट होने वाले व्यक्तियों (पिता-माता आदि) को रोग, शत्रुभय और वैकल्य देता है।

अब सूर्यादि ग्रहों के फल को कहते हैं।

सूर्यफल –

लग्नं गते दिनकरे रिपुनीचभागे
जातः कृशानुयुगबिन्दुयुते च रोग।
बाणादिबिन्दुसहितोदयगे दिनेशे
स्वोच्चेऽथवा निजगृहे नृपतिश्चिरायुः।।

शत्रु या नीच राशि के नवांश में स्थित सूर्य यदि लग्नगत हो और सूर्य के अष्टकवर्ग में उसे केवल 2 या 3 ही बिन्दु प्राप्त हों तो जातक रोगी, अष्टकवर्ग (सूर्य के) में लग्न यदि 5 या अधिक बिन्दुओं से युक्त हो और स्वगृही अथवा उच्चराशिगत सूर्य लग्न में स्थित हो तो जातक चिरंजीवी राजा होती है।

केन्द्रत्रिकोणोपगते दिनेशे षट्पंचसप्ताष्टकबिन्दुवर्गे।
रूद्रामलानीलचलाब्दकेषु जातस्य वा तज्जनकस्य मृत्युः।।

केन्द्र अथवा त्रिकोणगत सूर्य को यदि छः, पाँच, सात या आठ बिन्दु अष्टवर्ग में प्राप्त हों तो जातक अथवा उसके पिता की मृत्यु क्रमशः 22वें, 35वें, 30वें, और 36वें, वर्ष में होती है।

यदि जन्मांग में सूर्य चन्द्रमा, बुध और शनि के साथ केन्द्र में तथा त्रिकोण शोधन और एकाधिपत्य शोधन के अनन्तर उसे केवल दो बिन्दु प्राप्त हों तो जातक के दशवें वर्ष में पिता का भाग्योदय होता है।

चन्द्र फल –

शून्यागारं तरणिशशिनोरष्टवर्गे तदीयो
मासो राशिः सकलशुभदे कर्मणि त्याज्य आहुः।
यक्ष्मालस्यं शशिनि तनुगे सैकलोकाक्षिबिन्दौ
सप्तत्रिंशच्छरदि मरणं द्वित्रिखेटान्विते च।।

अर्थ है कि सूर्य और चन्द्रमा में अष्टवर्ग में बिन्दुरहित राशि में जब गोचर से सूर्य और चन्द्रमा संक्रमणशील हों तो उस अवधि में कोई शुभ नहीं करना चाहिए।

चन्द्राष्टकवर्ग में चन्द्रमा यदि एक, दो अथवा तीन बिन्दुओं से युक्त होकर लग्न में स्थित हो तो जातक यक्ष्मारोग से पीड़ित और आलसी होता है। उक्त स्थिति में यदि चन्द्रमा अन्य ग्रहों से युक्त हो तो जातक की आयु 37 वर्ष होती है।

केन्द्रत्रिकोणायगते शशांके नीचारिगे वृद्धिकलाविहीने।
बिन्दुद्विके वा यदि सत्रिबिन्दौ तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञा:।।

नीच अथवा शत्रु राशि का क्षीण चन्द्रमा एक, दो अथवा तीन बिन्दुओं से युक्त होकर यदि केन्द्र, त्रिकोण अथवा एकादश भाव में स्थित हो तो जातक उक्त चन्द्रमा जिस भाव में स्थित होता है उस भाव का नाश करता है।

चार अथवा चार से अधिक बिन्दुओं से युक्त चन्द्रमा यदि त्रिकोण, केन्द्र या एकादश भाव में स्थित हो तो उस भाव की वृद्धि करता है। आठ बिन्दुओं से युक्त चन्द्रमा यदि केन्द्र में स्थित हो तो जातक विद्वान, यशस्वी, धनिक, बलवान् प्रबल राजा होता है।

भौमफल –

स्वोच्चस्वके गुरुसुखोदयमानयाते
बिन्द्वष्टके च यदि कोटिधनप्रभु: स्यात्।
चापाजसिंहमृगकीटविलग्नसंस्थे
भौमे चतुष्टयफलोपगते च राजा।।

स्वराशि अथवा अपनी उच्चराशि का मंगल यदि 8 बिन्दुओं से युक्त लग्न, चतुर्थ, नवम अथवा दशम भाव में स्थित हो तो जातक कोटिपति या करोड़पति होता है।

मेष, कर्क, सिंह, धनु और मकर राशि का भौम यदि 4 बिन्दुओं से युत लग्न में स्थित हो तो जातक राजा होता है।

अष्टकवर्ग में भौम को यदि 8 बिन्दु प्राप्त हों तो जातक छोटा राजा होता है; यदि उक्त भौम लग्न या दशम भाव में हो तो जातक राजा होता है; यदि जातक राजकुल में उत्पन्न हो तो उक्त स्थिति में स्वोच्चस्थ अथवा स्वराशिस्थ मंगल जातक को चक्रवर्ती राजा बनाता है।

बुध फल –

केन्द्रत्रिकोणे वसुबिन्दुके ज्ञे।
जातीयविद्याधिकभोगशाली।।

स्वोच्चादिकैकद्वितयत्रिबिन्दौ

तद्भाववृद्धिर्न च भावहानिः।।

यदि बुध आठ बिन्दुओं से युक्त केन्द्र अथवा त्रिकोण भाव में स्थित हो तो जातक जातीय विद्या (स्वजाति के अनुरूप परम्परया प्रचलित विद्या अर्थात वर्णानुकूल व्यवसाय से सम्बन्धित ज्ञान) में पार..त और अनेक भोगों से सम्पन्न होते है। अपनी उच्चाराशि अथवा अपनी राशि में स्थित बुध एक, दो अथवा तीन बिन्दुओं से युक्त होकर जिस भाव में स्थित हो उस भाव की वह वृद्धि ही करता है, हानि नहीं।

अधिक बिन्दुओं से युक्त राशि का संक्रमण बुध जिस मास में करता हो उस मास में विद्यारम्भ कराने से व्यक्ति सर्वविद्यासम्पन्न होता है। बिन्दुरहित भाव में यदि गोचर में बुध का शनि से योग हो तो बन्धु-बान्धवों, जाति और सम्पदादि का विनाश होता है।

वृहस्पति फल –

जीवाष्टवर्गाधिकबिन्दुराशौ लग्ने निषेकं कुरूते सुतार्थी।

तद्राशिदिग्भागगृहस्थितानि गोवित्तयानानि बहूनि च स्युः।।

बृहस्पति के अष्टकवर्ग में जिस राशि को अधिक बिन्दु प्राप्त हों उस राशि के लग्न में पुत्र की कामना करने वाले व्यक्ति को गर्भाधान करना चाहिए। उस राशि की दिशा में गौ वाहन और सम्पदादि रखने से उसकी वृद्धि होती है।

बृहस्पति के अष्टकवर्ग में अल्पबिन्दु प्राप्त राशि जिस भाव में स्थित हो उस भाव में गोचर के सुर्य के संक्रमण काल में समस्त शुभ फलों का विनाश होता है।

पाँच अथवा पाँच से अधिक बिन्दुओं से युक्त बृहस्पति यदि त्रिक (6।8।12वें) भाव में स्थित हो (अथवा गोचर से संक्रमित हो) तो जातक चिरायु, धन-धान्यसम्पन्न और शत्रुजयी होता है।

अपनी उच्चराशि अथवा स्वराशि (9।12) में अवस्थित बृहस्पति यदि आठ बिन्दुओं से युक्त होकर केन्द्र या नवम भावों में स्थित हो, नीच या शत्रु की राशि में न हो तथा अस्त न हो तो जातक स्वंय के पुरूषार्थ से राजा होता है।

उक्त योगोत्पत्र जातक यदि ब्राहमण कुल का हो तो वह अपने द्वारा किये गये पुण्य कर्मों से विख्यात, बुद्धिमान्, प्रतापी और राजा के समान सम्पन्न होता है।

सात बिन्दुओं से युक्त चन्द्रमा यदि बृहस्पति से युक्त हो तो जातक अनेक स्त्री, धन और सन्तति सुख

से सुखी होता है। बृहस्पति और चन्द्र की यह युति छः बिन्दु से युक्त हो तो जातक वाहन और धनादि से सम्पन्न, यदि पाँच बिन्दु से युक्त हो तो जय और शीलादि गुणों से सम्पन्न होता है।

शुक्र फल –

साष्टबिन्दुफलकोणकेन्द्रगे भार्गवे तु बलवाहनाधिपः।
आयुरन्तमविनाशभोगवान् वित्तरत्नविभुरद्रिबिन्दुके।।

यदि शुक्र आठ बिन्दुओं सहित केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित हो तो जातक बल और वाहनादि से सुखी होता है। यदि सात बिन्दुओं से युक्त हो तो जातक जीवन पर्यन्त धन-रत्नादि वैभव-सुख का भोग करता है।

यदि पूर्वोक्त शुक्र नीचे राशिगत हो, अस्त हो, शत्रु (छठे), रिःफ (12वें) और निधन (7वें) भाव में स्थित हो तो पूर्वोक्त राजयोग भंग हो जाता है। अल्पबिन्दुयुक्त शुक्र जिस राशि में स्थित हो उसकी दिशा में स्त्री के शयनगृह का निर्माण कराना चाहिए।

शनि फल –

कोणस्य शून्यतरराशिगते तु मन्दे।
जातस्य मृत्युफलमाशुधनक्षयो वा।।
एकद्विलोकयुगबिन्दुयुते च केन्द्रे
मुक्ते स्वतुंगभवने रविजेऽल्पमायुः।।

बिन्दुरहित शनि द्वारा अष्टकवर्ग में बिन्दुरहित राशि के संक्रमण काल में जातक की मृत्यु अथवा उसके धन का विनाश होता है। एक, दो, तीन अथवा चार बिन्दुओं से युक्त शनि यदि केन्द्र में स्थित हो, अपनी उच्चराशि में न हो तो जातक अल्पायु होता है।

षट्पंचबिन्दुसहिते तनुगे बलाढये।
जन्मादिदुःखबहुलं धननाशमेति।।
मन्दे शरादिफलनीचसपत्नभावे
जातश्चिरायुरतिशोभनवर्गकेन्दौ।।

पाँच या छः बिन्दुओं से युक्त शनि यदि लग्न में अवस्थित हो तो जातक जन्म से ही अनेक कष्ट पाता है तथा उसके धन का नाश हो जाता है।

पाँच अथवा अधिक बिन्दुओं से युक्त शनि यदि नीच अथवा शत्रु राशिगत हो और चन्द्रमा अत्यन्त शुभ वर्ग में स्थित हो तो जातक दीर्घायु होता है।

मूढारिनीचगृहगे शरवेदबिन्दौ।

दास्युष्ट्रवित्तसहितास्तनये तनुस्थे।।

सौरेऽष्टबिन्दुगणिते परमन्त्रतन्त्र

ग्रामाधिपास्तु गिरिबिन्दुगृहे धनाढयः।।

नीच या शत्रु राशि का अथवा अस्त शनि यदि 4 या 5 बिन्दुओं से युत होकर लग्न या पंचम भाव में हो तो जातक को दासी, ऊँट और धन का लाभ होता है। आठ बिन्दुओं से युक्त शनि यदि लग्न अथवा पंचम भाव में स्थित हो तो जातक मन्त्र और तन्त्र में पटु, ग्रामाधिपति होता है। यदि उक्त स्थिति में शनि सात बिन्दुओं से युक्त हो तो जातक धनपति होता है।

फलदीपिका में मन्त्रेश्वर कहते हैं-

अपनी उच्च राशि में, अपनी राशि में, मित्रराशि में, त्रिकोण-केन्द्र-उपचय स्थानों में स्थित तथा शुभ वर्गादि बल से युक्त ग्रह भी यदि सर्वाष्टकवर्ग में अल्पबिन्दु से युक्त हो तो वे नेष्ट फल देते हैं। त्रिक (6।8।12वें) भाव में या सप्तम भाव में, नीच राशि में, पापग्रह या शत्रुग्रह के वर्ग में स्थिति से बलहीन हों तथा जो मान्दि स्थित राशि के स्वामी के साथ दुरभिसन्धि में लिप्त हों और जातक की वृद्धि में बाधक ही क्यों न हों यदि वे अधिक बिन्दुओं से युक्त हो तो सभी मुख्य फल जातक को देते हैं।

बोध प्रश्न : -

1. जिस भाव में चार बिन्दुओं से युक्त राशि स्थित हो उस भाव का फल क्या होगा।

   क. शुभ फल ख. अशुभ फल ग. मिश्रित फल घ. कोई नहीं

2. निम्न में केन्द्र स्थान है-

   क. १,४,७,१० ख. २,५,८,११ ग. ३,६,९,१२ घ. १,४,७,८

3. त्रिक् स्थान किसे कहते हैं -

   क. ४,७,१० ख. ६,८,१२ ग. २,४,९ घ. कोई नहीं

4. केन्द्र अथवा त्रिकोणगत सूर्य को यदि छः, पाँच, सात या आठ बिन्दु अष्टवर्ग में प्राप्त हों तो जातक अथवा उसके पिता की मृत्यु किस वर्ष में होती है।

   क. २२ ख. २८ ग. ४० घ. १०

5. पाँच या छः बिन्दुओं से युक्त शनि यदि लग्न में अवस्थित हो तो जातक का फल क्या होगा।

   क. श्रीवृद्धि ख. धननाश ग. लाभ घ. कोई नहीं

6. सात बिन्दुओं से युक्त चन्द्रमा यदि बृहस्पति से युक्त हो तो जातक का फल क्या होगा।

क. धन सम्पन्नता ख. आयु वृद्धि ग. स्त्रीसुख घ.उपयुक्त सभी

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है सामान्यतया अष्टक वर्ग के फल के बारे में आचार्य कहते हैं कि जिस भाव में चार बिन्दुओं से युक्त राशि स्थित हो उस भाव के मिश्रित फल अर्थात शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के फल जातक को प्राप्त होते हैं। किसी ग्रह के अष्टकवर्ग के जिस भाव में बिन्दु रहित राशि हो तो गोचर से उक्त ग्रह द्वारा उस राशि के संक्रमण काल में अत्यन्त अनिष्ट फल रोगापवाद-भय आदि होते हैं।

एक बिन्दु सहित राशि में जब अष्टकवर्ग सम्बन्धित ग्रह संक्रमण करता है तो जातक को अनेक

व्याधियों से कष्ट, सन्ताप, भय, यात्रा से कष्ट आदि फल होते है। दो बिन्दुयुक्त राशि के सम्बन्धित ग्रह द्वारा संक्रमण काल में मानसिक सन्ताप, राजा, चोर से भय, अपवाद, भोज्य पदार्थों का अभाव होता हैं।

तीन बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में मार्गावरोध, शारीरिक दौर्बल्य और मानसिक व्याकुलता होती हैं। चार बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में सुख-दुःख, धन की हानि और लाभ आदि अर्थात् मिश्रित फल होते हैं।

यदि पाँच बिन्दु युक्त राशि के संक्रमित हो तो उस अवधि में सुन्दर वस्त्रों का लाभ, पुत्र के लालन-पालन का सुख, सत्संगति का तथा विद्या-धनादि का सुख होता हैं। छः बिन्दुओं से संयुक्त राशि के संक्रमण काल में शारीरिक सौन्दर्य और स्वाभाविक शील में वृद्धि, संग्राम (विवादादि) में विजय तथा धन-यश-बल की वृद्धि और वाहनादि का सुख प्राप्त होता है।

सात बिन्दुओं से युक्त राशि के संक्रमण काल में अश्वादि से युक्त वाहन का सुख तथा सेना, धन, प्रभाव और सुन्दर वाहनों का लाभ होता है। आठ बिन्दुओं से युक्त राशि यदि संक्रमित हो तो राजा के सात गुणों-स्वामित्व, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सेना से युक्त राजा होता हैं।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

मार्गावरोध – मार्ग में संकट

केन्द्र - १,४,७,१०

त्रिकोण – ५,९

स्वामी – मालिक

शुभद – शुभ फल देने वाला

नेष्ट – खराब

सुखद – सुख देने वाला

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. ख
4. क
5. ख
6. घ

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातकपारिजात – अष्टकवर्गाध्याय:
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – अष्टकवर्गाध्याय:
3. लघुजातक – अष्टकवर्गाध्याय:
4. वृहज्जातक - अष्टकवर्गाध्याय:
5. फलदीपिका – अष्टकवर्गाध्याय:

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातकपारिजात – मूल लेखक – आचार्य वैद्यनाथ, टीकाकार – हरिशंकर पाठक
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – मूल लेखक – पराशर, टीकाकार – पं. पद्मनाभ शर्मा
3. लघुजातक – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय
4. वृहज्जातक - मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – डॉ. सत्येन्द्र मिश्र
5. फलदीपिका – मूल लेखक – मन्त्रेश्वर, टीकाकार – गोपेश कुमार ओझा

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. अष्टक वर्ग से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. सूर्य, चन्द्र, मंगल के अष्टक वर्ग का फल लिखिये।
3. अष्टक वर्ग के शुभाशुभ फल का प्रतिपादन कीजिये।
4. बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि का फल लिखिये।
4. सूर्यादि सप्त ग्रहों का फल लिखिये।